आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम. फिल्. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबन्ध)

1989

प्रस्तुतकर्त्री :

कुमारी ए. पुष्पावल्ली

निर्देशक

डॉ. वै. वेंकटरमणा राव

एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (तेलुगु), पी-एच. डी

प्रोफेसर एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मानविकी सकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद.

DECLARATION

I, **A. Pushpavalli**, hereby declare that this dissertation entitled **"Ācharya Hazari Prasad Dwivedī ke Upanyāsōn ka Manōvishleshanātmak Adhyayan"** has been written by me during 1988-89 under the guidance and supervision of **Dr. Y. Venkataramana Rao, M.A.(Hindi), M.A.(Telugu), Ph.D. (SVU)**, Professor and Head, Department of Hindi, School of Humanities, University of Hyderabad in partial fulfilment of the requirement for the award of **M.Phil.** degree.

I also declare that this dissertation is the result of my own effort and has not been submitted to any other University before for any degree or diploma.

A Pushpavalli 1-7-89
(A. PUSHPAVALLI)

SUPERVISOR'S CERTIFICATE

This is to certify that **Miss A. Pushpavalli, M.A.**, is a bonafide student of the Department of Hindi, School of Humanities, University of Hyderabad. This dissertation entitled **"Ācharya Hazari Prasad Dwivedī ke Upanyāsōn ka Manōvishleshanatmak Adhyayan"** is a bonafide record of the research work done under my supervision for the award of **M.Phil.** degree in partial fulfilment of the course.

30/6/89

Prof. Y. Venkataramana Rao
Professor of Hindi
Head, Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad

June 30, 1989

विषयानुक्रम

पृष्ठ

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय

व्यक्तित्व विश्लेषण मनोवैज्ञानिक भूमिका

1•0	व्यक्तित्व पक्ष का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन	1 – 2
1•1	जन्म स्थान	2 – 3
1•2	अध्ययन क्षेत्र और विद्वानों का प्रभाव	3 – 6
1•2•0	कृतित्व	7 – 10
1•2•1	आचार्य द्विवेदीजी का कृतित्व और समालोक व्यक्तित्व	10 – 11
1•2•2	निबन्धकार के रूप में आचार्य द्विवेदी	11 – 14
1•2•3	अध्यापक एवं निबन्धकार	14 – 15
1•2•4	उपन्यासकार के रूप में द्विवेदी जी	15 – 21
1•3	निष्कर्ष	21 – 23

द्वितीय अध्याय

प्रमुख मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में अनुप्रयुक्त मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

2•1•0	युग और शास्त्रों की प्राथमिकता	24 – 25
2•2•0	आधुनिक युग और मनोविज्ञान	– 25
2•2•1	आधुनिक मनोविज्ञान	25 – 26
2•2•2	साहित्य पर मनोविज्ञान का प्रभाव	– 26

2•2•3	मनोविज्ञान का क्षेत्र : एक विश्लेषण	26 - 27
2•2•4	साहित्य सृजन और मनोविज्ञान	27 - 28
2•3•0	साहित्य की प्रमुख विधाएँ और मनोविज्ञान	- 28
2•3•1	काव्य और मनोविज्ञान	28 - 29
2•3•2	नाटक और मनोविज्ञान	29 - 30
2•3•3	कहानी और मनोविज्ञान	- 31
2•3•4	उपन्यास और मनोविज्ञान	32 - 33
2•4•0	हिन्दी उपन्यास और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त	- 34
2•4•1	फ्रायड् का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त	34 - 39
2•4•2	एल्फ्रेड एड्लर के वैयक्तिक मनोविज्ञान	39 - 41
2•4•3	युंग का विश्लेषणात्मक सिद्धान्त	41 - 44
2•4•4	अन्य मनोविश्लेषक	- 44
2•4•5	मनोरचनाएँ या रक्षा युक्तियाँ	45 - 50
2•5•0	हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में प्रयुक्त मनो - विश्लेषणात्मक सिद्धान्त	
2•5•1	फ्रायड के सिद्धान्त	50 - 51
2•5•2	एड्लर के सिद्धान्त	- 51
2•5•3	युंग के सिद्धान्त	- 51
2•5•4	विकृतियाँ	- 52
2•6	निष्कर्ष	- 53

तृतीय अध्याय

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

3·3·0	भूमिका	54 - 55
3·3·1	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में प्राप्त पराहम् या नैतिक विवेक से सम्बन्धित सन्दर्भ	56 - 58
3·3·2	आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों का अचेतन मन	58 - 72
3·3·3	आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पात्रों की अपराध भावना	72 - 82
3·3·4	आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न रक्षा युक्तियाँ	83 - 96
3·3·5	स्वप्न सिद्धान्तों के आधार पर उपन्यासों का विश्लेषण	96 - 112
3·3·6	आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व	112 - 115
3·3·7	आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पात्रों के द्वारा प्राप्त लैंगिक विपर्यास एवं संदर्भ	115 - 122
3·3·8	आचार्य द्विवेदी के उपन्यास - मनोविकार से पीड़ित पात्र	122 - 123
3·3·9	आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पात्र : विभ्रम भाव	123 - 125
3·3·10	उपन्यासों के पात्रों द्वारा हीन, उच्च और उच्चता के प्रयास	125 - 132
3·3·11	उपन्यासों के कुछ संदर्भ युग के समूहिक अचेतन सिद्धान्त	133 - 136
3·3·12	आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में प्राप्त परामनोविज्ञान से सम्बन्धित सन्दर्भ	136 - 139
3·3·13	निष्कर्ष	- 139

प्राक्कथन

प्राक्कथन

शोध एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है । आधुनिक युग में साहित्य के क्षेत्र के इस दिशा में एक क्रान्ति दिखाई देती है । साहित्य को अन्य अनुशासनों में विकसित सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार पर परखने का और उसके मूल्यांकन का कार्य आज बहुत आकर्षक है। मैंने स्नातकीय स्तरमनोविज्ञान शास्त्र को एक विशेष विषय के रूप में अध्ययन किया है। साहित्य के क्षेत्र में एम्.ए उपाधि पाने के बाद, मेरे मन में मनोविज्ञान और साहित्य के अन्तःसम्बन्धों को देखने की इच्छा जागृत हुई ।

अनुसन्धान का क्षेत्र इस कार्य के लिए उपयुक्त है । मुझे जब एम्.फिल में प्रवेश मिला तो मेरे मन में अन्तरअनुशासनिक अनुसन्धान की दिशा में बढ़ने की प्रेरणा जागी । इच्छा व्यक्त करने पर हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने इस दिशा में आगे बढ़ने का रास्ता दिखाया ।

शोध प्रबन्ध के लिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों को चुना है । इस विषय को चुनने में एक और बात भी है । आचार्य द्विवेदी के उपन्यास प्राचीन की आधार शिला पर सांस्कृतिक भूमिका के साथ आधुनिक युग में रचे गये हैं । मानव की मानसिकता का सर्व-कालिक रूप इन उपन्यासों में उभर कर आया है । प्राचीन और अर्वाचीन का एक सुन्दर समन्वय इन में खास कर के मनोवैज्ञानिक भूमिका में पाया जा सकता है ।

मनोविज्ञान के सिद्धान्तों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाली रचनाओं की आधुनिक साहित्य में कमी नहीं है । ऐसी हर विधा से सम्बन्धित रचनाओं पर मनोविज्ञान की दृष्टि से अध्ययन बहुमात्रा में हुई भी हैं । उपन्यास के क्षेत्र में इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र आदि के उपन्यासों का अध्ययन इस दिशा में देखा जा सकता है । किन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन ही प्राप्त होते हैं । मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित इन उपन्यासों के अध्ययन फुटकल रूप में ही

हुए हैं । एक समग्र अध्ययन का अभाव है, इस दृष्टि से आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का यह प्रथम प्रयास है ।

प्रस्तुत अध्ययन की योजना पाँच अध्यायों में की गई है । अध्याय विवरण संक्षेप में इस प्रकार है ।

प्रथम अध्याय में आचार्य द्विवेदी जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पक्ष का मनोवैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है ।

द्वितीय अध्याय में प्रमुख मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । इसके साथ-साथ द्विवेदी जी के उपन्यासों के अध्ययन के लिए उपयुक्त मनोविश्लेषण सिद्धान्तों को रेखांकित भी किया गया है ।

तृतीय अध्याय में आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । यह अध्याय कुल बारह उपशीर्षकों में बँटा है । प्रत्येक उपशीर्षक किसी एक विशिष्ट मनोविश्लेषण सिद्धान्त से सम्बन्धित सन्दर्भों को विश्लेषण सहित प्रस्तुत करता है ।

चतुर्थ अध्याय में उपन्यासों के तत्वों-कथा वस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण और कथोपकथन या संवाद का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है । यह समग्र तो नहीं कहा जा सकता किन्तु दिशा निर्देशक अवश्य है ।

पंचम अध्याय उपसंहार का है । अध्ययन के निष्कर्षों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना इस अध्याय का लक्ष्य रहा है ।

सीमित समय में विस्तृत अध्ययन अनेक सीमाओं से बन्ध कर चलता है । आचार्य द्विवेदीजी के सभी उपन्यासों का समग्र अध्ययन अनेक संभावनाओं को लेकर है ।

समय की सीमा अध्ययन की गहराई और विस्तृति सीमित करती ही है । इसीलिए हो सकता है कि इस लघु-प्रबन्ध में सीमा से बंध कर चलने के कारण कुछ सन्दर्भ छूट गये हो जिनका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन नहीं हो पाया होगा । किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस अध्ययन से आचार्य जी को एक नये दृष्टिकोण से परखने का प्रयत्न किया गया है ।

इस लघु शोध प्रबन्ध लेखन कार्य सफल होने के पीछे कई लोगों ने मुझे सहायता की है । मैं अपने सभी परिवार के सदस्यों के प्रति सहृदयपूर्वक आभारी हूँ । मै विशेष कर डा॰शिवप्रसाद सिंह, डॉ॰सूर्यनारायण द्विवेदी और डा॰विजयपाल सिंह [काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के] की आभारी हूँ । इन विद्वानों ने इस शोध कार्य में सस्नेह सहायता अपने परामर्शों द्वारा की है । मैं हिन्दी विभाग के सभी गुरुजनों के प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ । विभाग अध्यक्ष और निर्देशक डॉ॰ वाई॰वेंकटरमण रावजी के प्रति अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपना सहयोग दे कर मुझे इस कार्य में प्रोत्साहित किया । अपना महत्वपूर्ण समय देकर मुझे मार्गदर्शन करने के लिए वे हमेशा तैयार रहे है । यही कारण है कि ठीकसमय में मेरा कार्य हो सका है ।

कार्य विज्ञों के हाथ में समर्पित है । अस्तु

चतुर्थ अध्याय

उपन्यास तत्व और मनोविश्लेषण

4·1	मनोवैज्ञानिक उपन्यास और कथावस्तु	140 - 142
4·1·1	आचार्य द्विवेदी के उपन्यास कथावस्तु	142 - 146
4·4·2	चरित्र - चित्रण का विवेचन	146 - 154
4·4·3	मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वातावरण	154 - 158
4·4·4	आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में संवाद	- 159
5·0	उपसंहार	165 - 167
	सहायक ग्रन्थ सूची	168 - 172

प्रथम अध्याय

व्यक्तित्व विश्लेषण मनोवैज्ञानिक भूमिका

व्यक्तित्व विश्लेषण - मनोवैज्ञानिक भूमिका

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी

(व्यक्तित्व और कृतित्व पक्ष)

1.0. व्यक्तित्व पक्ष का मनोविश्लेषनात्मक अध्ययन :

व्यक्तित्व एक-आध दिन में निखर कर उभरने वाला नहीं है । किसी भी व्यक्ति का अच्छा या बुरा बनने के पीछे कई कारक होते हैं । व्यक्ति के जन्म से सम्बन्धित परिस्थितियाँ, उनके विकास का वातावरण और प्रभावित करनेवाले अन्य लोग आदि सबका व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव होता है । यह सब जानना व्यक्तित्व के विश्लेषण एवं अध्ययन के लिए आवश्यक है । आचार्य द्विवेदी जी भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं --

" मनुष्य का जीवन स्लेट पर लगाया जानेवाला हिसाब नहीं है कि गलती हुई तो उसे मिटाकर फिर से ठीक-ठीक हिसाब लगा लिया गया । यहाँ तो जो गलती एक बार हुई वह निश्चित रूप से जीवन को मोड़ने की क्रिया में अपना प्रभाव छोड़ जाया करती है । " [1]

आचार्य द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य में एक प्रसिद्ध समीक्षक, अध्ययनशील आलोचक, निपुण निबन्धकार तथा सफल उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं । इनकी लेखनी को समझने के लिए पहले उनके व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना ज़रूरी है ।

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - 10, साहित्य में व्यक्ति और समष्टि, पृष्ठ - 87.

अगर इतिहास की ओर पलट कर देखा जाय तो पता चलता है कि प्राचीन काल से आज तक जितने भी प्रसिद्ध साहित्यकार हुए हैं, उनमें से अधिकांश को आरंभिक जीवन में या जीवनकाल में कुछ-न-कुछ कठिनाईयों का सामना करना ही पड़ा था । उदाहरण के लिए साम्यूल जानसन को ले सकते हैं । उन्होंने भी अपने जीवनकाल में अनेक कठिनाईयों का सामना किया था, फिर भी साहित्य के क्षेत्र में एक ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है । आचार्य द्विवेदी जी इसके अपवाद न थे ।

1.1 जन्म स्थान :

आचार्य द्विवेदी जी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के ओजवालिया नामक गाँव में सन् 1907 ई॰ ﴾ वि॰स॰ 1964 ﴿ शुद्ध श्रावण, शुक्ल एकादशी को एक ऐसे ब्राम्हण परिवार में हुआ था जिसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी , जिसके कारण बचपन से ही उनमें संयमित और निरंतर परिश्रम करने की प्रवृत्ति आ गयी थी । वह जीवन के अन्त तक बनी रही । परन्तु घर की परिस्थितियाँ उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधक नहीं बनी । क्योंकि उनके माता-पिता से उन्हें भरपूर स्नेह मिला था । नव्य फ्रायडवादी कैरेन हॉनी के अनुसार बचपन में बच्चे को केवल दो चीजों की जरूरत होती है - एक तो सुरक्षा (safety) और दूसरी सन्तुष्टि (satisfaction) जिसमें अधिक महत्व सुरक्षा को प्राप्त होती है । यह बच्चे को माता-पिता से ही प्राप्त होती है ।

माता-पिता के अच्छे या बुरे व्यवहार के साथ-साथ बच्चे पर वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी जिस वातावरण में पनप रहे थे, वह धार्मिक मानसिकता से पूर्ण था, जिससे उन्हें साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण सहयोग मिला । उनकी माता परमज्योति देवी से उन्हें ममता मिली । उनके पिताजी प॰ अनमोल द्विवेदी परम धार्मिक व्यक्ति थे । वे कम पढ़े-लिखे थे लेकिन धार्मिक चर्चाओं में उनका मन लगता था । पूजा-पाठ के अलावा वे ध्यान भी करते थे । आचार्य द्विवेदी जी पर उनके माता-पिता का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि वे भी भगवान श्रीकृष्ण की उपासना करने लगे थे ।

साधारणत: यह पाया जाता है कि बच्चे के साथ घर और बाहर के लोगों के व्यवहारों के कारण उसमें महद्भाव ग्रंथि (superiority complex) या हीन-ग्रंथि (inferiority complex) का उद्भव होता है । परन्तु आचार्य द्विवेदी जी के बचपन में इस तरह की बात नहीं देखी जाती क्योंकि उन्हें हर छोर से निरन्तर अच्छा, सहज और सरल व्यवहार ही मिला था ।

1·2 अध्ययन क्षेत्र और विद्वानों का प्रभाव :

आचार्य द्विवेदी जी ने 15 से 22 वर्ष की उम्र तक लगभग आठ साल काशी में संस्कृत का अध्ययन किया । उस समय उनकी भेंट कई विद्वानों से हुई जो हिन्दी साहित्य में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखते थे । इनमें हरिऔध जी उल्लेखनीय हैं। जो अपनी रचनाओं को बड़ी चाव से उन्हें सुनाया करते थे । इसके अलावा उन्हें कविता लिखने के लिए सदैव प्रोत्साहित करते थे । आचार्य द्विवेदी जी यह स्वीकार करते थे कि आचार्य शुक्ल जी और बाबू श्यामसुन्दर दास उनकी पहुँच से बाहर है । पर लाला भगवानदीन और हरिऔधजी उन पर बड़ी कृपा रखते थे । इनके अलावा पंडित नन्द - दुलारे वाजपेयी जी और मदन मोहन मालवीया जी से भी इनका अच्छा परिचय था । मालवीय जी के विचारों का द्विवेदी जी पर इतना गहरा असर पड़ा कि हिन्दुत्व की परिष्कार की भावना से प्रभावित होकर उन्होंने प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन करना शुरू किया ।

हरिऔध जी के कहने पर 23 वर्ष की आयु में ही शान्तिनिकेतन में द्विवेदी जी हिन्दी के अध्यापक बनकर गये । वे वहाँ 20 वर्ष तक कार्य करते रहे । उन्होने जो प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन काशी में किया था उसका उपयोग शान्तिनिकेतन काल में विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर के अलावा विधुशेखर और क्षिति मोहन सेन से भी वे प्रभावित हुए । आचार्य द्विवेदी जी इतने भाग्यशाली थे कि आधुनिक भारत के निर्माता गाँधाजी, राजेन्द्र प्रसाद, एवं जवाहर लाल जैसे महापुरूषों के न केवल सम्पर्क में आये बल्कि उनमें अधिकांश के वे विश्वास पात्र भी बने । इन सब के विचारों का प्रभाव आचार्य द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व में दिखलाई देता है ।

मनोवैज्ञानिको का कहना है कि श्रेष्ठ व्यक्तियों के सतसंग से किसी भी व्यक्ति में परिवर्तन आता है । जैसे कि रविन्द्रनाथ ठाकुर के पास रहते हुए आचार्य द्विवेदी जी ने सूर-साहित्य, हिन्दी साहित्य की भूमिका, बाण भट्ट की आत्मकथा आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे ।

हर व्यक्ति यह चाहता है कि वह किसी-न-किसी क्षेत्र में अपनी छाप छोड़े जिससे समाज में लोग उसे जाने । यही प्रवृत्ति आचार्य द्विवेदी जी में भी मिलती है । बीसवी सदी के तीसरे दशक में उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे अनेक विषयों पर लगातार लिखना शुरू किया, जिससे कि वे अपना स्व-पहचान (self-identity) देकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर सके । इनमें एक और गुण जो पाया जाता है वह महत्ता की प्राप्ति (striving for superiority) की दिशा में प्रयत्न-शील न रहने का है । उन्हें साधारण विषय पर भी लेख लिखना हो तो वे समस्त विषय सम्बन्धित-सामग्री समेटने में जुट जाते थे । क्योंकि उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं कोई सन्दर्भ या संकेत छूट न जाया। वे 43 वर्ष की आयू में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष बने । उन्होंने यहाँ दस वर्ष तक कार्य किया । जुलाई सन् 1960 ई॰ में, जब वे 53 वर्ष के थे तब काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से चंड़ीगढ़ विश्वविद्या-लय चले गये । वे इस काल को सबसे बड़ा संकट और संत्रास का समय मानते थे । इसे वे अपना पाप का परिणाम कहा करते थे । वह पाप उनके अनुसार गुरू देव के शान्ति-निकेतन को छोड़कर आजाना था । जब वे चंड़ीगढ़ पहुँचे तो वहाँ उन्होंने " कुटज " लिखा जो उनकी संत्रास कालीन मन: स्थिति की अभिव्यक्ति थी । सुरक्षात्मक गत्या-त्मकता (defence mechanism) के अनुसार आचार्य द्विवेदी जी के इस तरह सोचने के कारण को तार्किकरण अथवा औचित्य स्थापन (rationalisation) कहते है । यह सही बात है कि जो मन में खुशी या दुख अनुभव करता है, वह व्यक्ति किसी-न-किसी माध्यम से उसे बाहरी रूप में दिखाता है । द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की तुलना किसी साधारण व्यक्ति से नहीं की जा सकती है । क्योंकि वे संकट और संत्रास के समय भी अपने प्रति निर्मोही (cold-hearted) और तटस्थ (neutral) रह सकते थे । इससे पता चलता है कि वे पलायनवादी (escapist) नहीं थे। बल्कि ऊँचे मूल्यों और कठोर रास्तों को अपनाने के लिए तैयार रहते थे । ऐसे व्यक्तित्व को अपने में बिरला ही माना जा सकता है ।

आचार्य द्विवेदी जी का समाज के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण था । वे रवीन्द्रनाथ जी के जीवन दर्शन से अधिक प्रभावित थे । फलस्वरूप उन्होंने मानव को उच्च स्थान दिया है । उनका विचार था कि विभिन्न जातियाँ और धर्मों के बीच जो सम्बन्ध है उसी का नाम मानवता है । वे संकीर्ण विचारधार के नहीं थे। उनका मानना था कि सभी मानवों में मूल्यत: कुछ पुराने संस्कार और नये अनुभव होते है । यही कारण है कि उनकी रचनाओं में परावनता और नवीनता दिखाई देती है।

आचार्य द्विवेदी जी सरल तथा रुचिर (मधुर) आदर्श के प्रति मूर्ति थे । वे त्याग और दान को अधिक महत्व देते थे तथा सामान्य तौर पर उनका व्यवहार भी सहज था । कथनी और करनी में भेद और दिखावे से वे काफी चिढ़ते थे । दिखावे को साधारणत: वे ही लोग पंसद करते है जिनमें शारीरिक या मानसिक कमज़ोरी होती है ।

उनके व्यक्तित्व की कुछ प्रमुख विशेषतायें - विनोदी स्वभाव, खुलकर हंसना, सरल और निष्कपट रहना आदि है । वे बहुत ही उदार स्वभाव के व्यक्ति थे । यह उनकी विचार धारा से ही पता चलता है । यह व्यक्तित्व एड्लर के विचारों से मिलता है । एड्लर का मानना था कि -

> "Man is not bad by nature, whatever his faults have been faults due to erraneous conception of life - he must not be oppressed by them. He can change. The past is dead. He is free to be happy"[2]

इसी सन्दर्भ में द्विवेदी जी का कहना था कि मनुष्य प्रकृति से बेइमान नहीं होता बल्कि परिस्थिति के कारण वह किसी निश्चित रूप से व्यवहार करता है ।

डा•गणपति चन्द्र गुप्त,आचार्य द्विवेदी जी को कुशल बुद्धि, उदार हृदय एवं व्यापक माननीय चेतना की स्थाई निधियाँ पैतृक दाय के रूप में प्राप्त हुई । संस्कृत

---

2 Theories of Personality - Duaneschultz p.48

अपभ्रंश, हिन्दी, बंगला आदि के अध्ययन से उन्हें साहित्य के निरंतर सौंदर्य और उसके शाश्वत तत्वों का बोध प्राप्त हुआ है ।

मनुष्य को गतिशील होना बहुत ज़रूरी है । वह तभी हो सकता है जब वह जिज्ञासु और आशावादी हो । ये गुण द्विवेदी जी में मिलते हैं । वे इतने अधिक जिज्ञासु थे कि अतीत के प्रति उनका असीम मोह था । और वे सोचते थे कि शायद उसमें कुछ मिल जाय । इस लिए वे लगातार मंत्र-तंत्र, पुराण आदि का अध्ययन करते थे । इसके साथ वे आशावादी भी थे । वे मानते थे कि मनुष्य के लिए आशा सबसे बड़ी सम्बल है । इसलिए उदास और निराश लोगों को हताश होने से बचाने का प्रयत्न करते थे ।

स्वभाव से वे बाहिर्मुखी (extrovert) थे । वे कभी किसी पर क्रोधित या अप्रसन्न नहीं होते थे । उनका विनय स्वभाव एक ऐसा कवच था जो एक ओर तो उनके अंह को छिपा कर रखता था और दूसरी ओर उनके गुणों को कई गुना बढ़ाकर प्रकाश में लाता था । इसलिए उनके स्वाभिमान पर प्रहार करना कठिन था । उनके व्यक्तित्व का एक और महत्वपूर्ण गुण उनका निर्लोभी होना था । अत: वह व्यक्ति क्यो नहीं सर्व प्रिय हो सकता है जिसमें सहजता, सरलता, परिहास-प्रियता, विनय-शीलता, एवं उदार व्यक्तित्व हो । इन सभी गुणों के अलावा उनकी रूचियाँ भी काफी निराली थीं । उनकी पुत्री श्रीमती मालती तिवारी का कहना है कि --

" बाबूजी शल्य चिकित्सा से लेकर पाकविद्या, संगीतकला, चित्रकला, उद्यान-कला, आदि विविध विषयों के मर्मज्ञ थे । उनके बच्चे सब विषयों में उनके विश्वस्त सहायक रहते थे । और माँ सबकी कुटी समीक्षिका, बाबुजी निर्विकार भाव से अपनी कला-साधना में लगे रहते थे । पर हैं वे विशुद्ध अफलाकांक्षी ही । " [3]

---

3. शान्तिनिकेतन से शिवालिक - सं. डा. शिव प्रसाद सिंह - पृ. 31.

अत: कहा जा सकता है कि एक गृहस्थ के रूप में भी उनका व्यक्तित्व महनीय था ।

1·2·0 कृतित्व :-

आचार्य द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में उनके विशाल अध्ययन का अत्यंत महत्वपूर्ण योग रहा है । उनका अध्ययन व्यवसायिक नहीं था । वे जो कुछ पढ़ते थे उस को बहुत सुन्दर ढ़ंग से अपने लेखन क्रम में उपयोग करते थे । जिस प्रकार आचार्य द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के विविध आयाम थे उसी प्रकार उनके साहित्य में भी विविध रूपात्मक विस्तार पाया जाता है । इसमें एक ओर विधापरक अनेक रूपता है तो दूसरी ओर वैज्ञानिक, सौंदर्यात्मक, अभिव्यक्तिपरक उदात्तता मिलती है । इस विस्तृति में आचार्य द्विवेदी जी के आलोचक, अन्वेषक, इतिहास लेखक, निबन्धकार, तथा उपन्यासकार के साथ-साथ कुशल वक्ता और सफल अध्यापक के रूप भी प्राप्त होते है ।

उन्होंने सन् 1930 ई· में अपना सृजन कार्य आरंम्भ किया था।उन्होंने काशी में रहते हुए संस्कृत और ज्योतिष्य का काफी अध्ययन किया था, जिसका प्रभाव उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है । ज्ञानार्जन और सर्जन के बीच संक्रमण और अनेक व्यक्तियों का भी प्रभाव मिलता है जिनसे सम्पर्क द्विवेदी जी कर सके थे ।

आचार्य द्विवेदी जी की रचनाओं की एक सूची नीचे प्रस्तुत की गयी है जिसके आधार पर उनकी रचनाओं की विविधता को देखा जा सकता है । इस सूची में रचनाओं के साथ जो समय दिया गया है वह रचना के प्रथम संस्करण काल को सूचित करता है ।

रचनाएँ

I • उपन्यास :-

1•	बाणभट्ट की आत्मकथा	:	1946
2•	चारूचन्द्र लेख	:	1963
3•	पुनर्नवा	:	1973
4•	अनामदास का पोथा	:	1976

II • निबन्ध संग्रह :-

1•	अशोक के फूल	:	1948
2•	कल्पलता	:	1951
3•	कुटज	:	1954
4•	विचार प्रवाह	:	1959
5•	विचार और वितर्क	:	1972
6•	सिक्ख गुरूओं का पुण्यस्मरण	:	1979

III• जीवनी और संस्मरण :-

1•	मृत्युंजय रवीन्द्र	:	1963

IV• समालोचना :-

1•	सूर साहित्य	:	1936
2•	हिन्दी साहित्य की भूमिका	:	1940
3•	प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद	:	1940
4•	कबीर	:	1942

5.	साहित्य का मर्म	:	1943
6.	नाथ सम्प्रदाय	:	1950
7.	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	:	1952
8.	हिन्दी साहित्य (उसका उद्भव और विकास)	:	1952
9.	साहित्य सहचर	:	1955
10.	मेघदूत : एक पुरानी कहानी	:	1957
11.	सहज साधना	:	1963
12.	कालिदास की लालित्य योजना	:	1965
13.	मध्यकालीन धर्म साधना	:	1970
14.	मध्यकालीन बोध का स्वरूप	:	1970
15.	लालित्य तत्व	:	अप्रकाशित
16.	हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण	:	"

V. सम्पादित ग्रन्थ :

1.	संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो सह सम्पादन डा. नामवर सिंह के साथ	:	1952
2.	नाथ सिद्धों की बानियाँ	:	1957
3.	नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दश रूपक	:	1963
4.	संदेश रासक सह सम्पादन डा. विश्वनाथ त्रिपाठी के साथ	:	1965

VI. पत्रिकाओं का सम्पादन :

1.	विश्व-भारती-कलकत्ता	:	सन् 1941-1947 ई. तक
2.	साहित्य अकादमी से प्रकाशित नेशनल बिब्लियोग्राफी के निरीक्षक	:	सन् 1954 ई.

V. II. अनुदित रचनाएँ :-

1.	लाल कनेर	:	1958
2.	चंचला (रवीन्द्रनाथ कृत विचार-प्रवाह में प्रकाशित)	:	1959
3.	मेरा बचपन - रवीन्द्रनाथ कृत प्रबन्ध चिंतामणी कोश	:	अप्रकाशित
4.	पुरातन प्रबन्ध संग्रह	:	"

1.2.1 आचार्य द्विवेदी जी का कृतित्व और समालोक व्यक्तित्व :-

यह देखकर आश्चर्य होता है कि द्विवेदी जी ने हिन्दी की औपचारिक शिक्षा कभी नहीं पायी थी फिर भी हिन्दी क्षेत्र को इतनी अधिक रचनाएँ दे सके है । इनके आधार पर इन्हें साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान मिल गया है । आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार --

" यो द्विवेदी जी के कृतित्व का क्षेत्र तो व्यापक था किन्तु अधिक प्रिय उन्हें चार विधाएँ थी - इतिहास,समालोचना, उपन्यास और निबन्ध । " [4]

आचार्य द्विवेदी जी ने सर्व प्रथम शान्तिनिकेतन के प्रशान्त वातावरण में समालोचना सूर-साहित्य पर की थी । इसके अलावा उन्होंने बारह और समालोचनाएँ लिखी । इस समीक्षक रूपी व्यक्तित्व के समाने कुछ जाने-माने आलोचक भी आश्चर्य चकित हो गये । पं.नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना था कि —

---

4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्मृति धरोदर लेख - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : मेरी दृष्टि मे आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा - पृ. 42.

" हमें यह देख कर प्रसन्नता होती है कि डा॰ हजारी प्रसाद जी तथा डा॰माता प्रसाद गुप्त जी जैसे नये शोधकर्ताओं ने साहित्य-समीक्षा तथा शोध कार्य का अन्तर समझकर दोनों के बीच चक्कर लगाने की आदत छोड दी है । "[5]

डा॰रामकुमार वर्मा का समीक्षकों के सन्दर्भ में यह मानना है कि —

" आचार्य शुक्ल के बाद समालोचना में कोई उत्क्रान्ति नहीं हुई । सचमुच में शुक्लजी की सीमाओं से हर सही दिशा में सोचने का कार्य बहुत दिनों तक स्थगितसा रहा । आचार्य द्विवेदी जी पहले हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक है जिन्होंने आचार्य शुक्लजी की सीमाओं को सशक्त प्रमाणों से खण्डित किया और हिन्दी साहित्य के इतिहास को एक सुस्पष्ट पीठिका प्रदान की । "[6]

आचार्य द्विवेदी जी मे एक खास बात यह थी कि वे आलोचक के रूप में बहुत लोकप्रिय थे इसलिए कथा लेखिका प्रतिभा बसु का कहना है कि —

" यदि बंगला को ऐसा समीक्षक मिल जाता तो दूसरा रवीन्द्रनाथ पैदा हो सकता था । "[7]

1·2·2 निबन्धकार के रूप में आचार्य द्विवेदजी :-

आचार्य द्विवेदी जी ने कुल 150 निबन्ध लिखे है । उनके निबन्ध साहित्य और रस से भरे होते है । वे अपनी अनुभूतियों को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते है । गम्भीर विषय भी इनकी विनोद प्रियता के कारण सहज-सरल बन जाते है ।

5· हजारी प्रसाद द्विवेदी – स॰ विश्वनाथ प्रसाद सिंह – लेख – आलोचक आचार्य द्विवेदी – रामचन्द्र तिवारी पृ॰ 113·

6· आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य एक अनुशीलन–यदुनाथ चौबे–पृ॰195·

7· आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – स्मृति धरोहर स॰शंकर दयाल सिंह – लेख – अमर साहित्य निर्माता – राजीव कुमार गुप्ता – पृ॰ 39·

आचार्य द्विवेदी जी के निबन्धों के बारे में आचार्य विद्यानिवास मिश्र का कहना है कि --

" इनका आह्वान है, पास आओ, और पास आओ, मै घर-द्वार का आदमी हूँ, घर-द्वार की ही बात करूँगा । " 8

इनके निबन्धों को पढ़ने पर लगता है कि वे इतिहास के प्रति काफी सावधान रहते थे । किसी भी पक्ष के बारे में लिखना हो तो ऐतिहासिक सत्य को जरूर देते थे । उदाहरण के लिए" अशोक के फूल " का इतिहास स्पष्ट करते हुए लिखते है --

" ईस्वी सन् के आरंभ के आस-पास अशोक का शानदार पुष्प भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प में उद्वत महिमा के साथ आया था । उसी समय शताब्दियों के परिचित यक्षों और गंधर्वो ने भारतीय धर्म साधना को एक दम नवीन रूप में बदल दिया था । " 9

आचार्य द्विवेदी सौन्दर्य के उपासक थे । प्रकृति के प्रति उनकी सौन्दर्य चेतना कभी-कभी दर्शन से अनुप्राणित होकर अभिव्यक्ति पाती है । वे अपने निबन्धों में प्रकृति के सभी रूपों को समाते थे । उनके कुछ निबंधों के शीर्षकों से भी पता चलता है कि वे कितने प्रकृति प्रेमी थे । जैसे - " वसन्त आ गया है ", " आमफिर बौर गया ", " शिरीष के फूल ", " अशोक के फूल " आदि । इतना ही नहीं वे प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन करते समय वातावरण के बारे में भी लिखते है, जहाँ वे बैठ कर लिखते है । जैसे कि " वसन्त आ गया " निबन्ध में कुछ इस प्रकार लिखते है :-

---

8. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - स्मृति - धरोदर - लेख - शुक्लजी और द्विवेदीजी निबन्धकार के रूप में - डा. कालिखर शर्मा पृ. 63.
9. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - 9 - अशोक के फूल पृ. 20.

" जिस स्थान पर बैठकर लिख रहा हूँ, उसके आस-पास कुछ थोड़े से पेड़ है । एक शिरीष है, जिस पर लम्बी-लम्बी सूखी छिम्मियाँ अभी लटकी हुई है । पत्ते कुछ झड़ गये है और कुछ झड़ने के रास्ते में है । " 10

आचार्य द्विवेदी जी प्रकृति सौन्दर्य को नारी के सौन्दर्य से तुलना कर प्राय: अपने सौन्दर्य प्रियता का दर्शन कराते है । उदाहरण के लिए " अशोक के फूल " निबन्ध की निम्न पंक्तियों को लिया जा सकता है --

" सुन्दरियों के आसिंजनकारी नुपुर वाले चरणों के मृदु आघात से वह फुलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रूप में झूलता था, और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ-गुना बढ़ा देता था । " 11

इन शब्दों में प्रकृति सौन्दर्य और सुन्दर युवती के बीच एक काल्पनिक सम्बंध की स्थापना के द्वारा उन्होंने अपने सौन्दर्य दृष्टि को एक अनोखा रूप में ही प्रस्तुत किया है, जो उनके व्यक्तित्व के सौन्दर्य निरीक्षण पक्ष को उजागर करता है ।

आचार्य द्विवेदी जी निबन्ध लिखते-लिखते अपने मन की बात भी कह जाते है । जैसे अशोक के फूल में लिखते है कि --

" मेरा मन प्राचीन काल के कुण्झाटिकाच्छन्न आकाश में दूर तक उड़ना चाहता है । हाय ! पंख कहाँ गये । " 12

इन पंक्तियों से प्राचीनकाल के प्रति उनका झुकाव का परिचय मिलता है ।

10· ग्रन्थावली - 9 भाग, वसन्त आगया है - पृ· 50·
11· ग्रन्थावली - 9 भाग, " अशोक का फूल " पृ· 19·
12· ग्रन्थावली - 9 भाग, " अशोक का फूल " पृ· 21·

उनका निबन्ध " नाखून क्यों बढ़ते है " काफी रोचक है । इसकी शुरू-आत उनकी छोटी लड़की के प्रश्न से होता है और वह शीघ्र ही गंभीर विषय में बदल जाता है । द्विवेदीजी बड़े ही सुन्दर रूप में मनुष्य की आदिम व्यवस्था से लेकर आधुनिक परिवर्तन तक चित्रित करते है । इस निबन्ध की कुछ पंक्तियों को पढ़ने से लगता है कि उनको भी मनोविज्ञान का ज्ञान था । वे लिखते हैं कि --

" नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है । बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाज़ा है । मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास यानी बिना सिखाये ही आ जाती है वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है । " 13

यह माना जाता है कि मनुष्य में कुछ मूल प्रवृत्तियाँ (instincts) है जो पशु के व्यवहार से काफी मिलती-जुलती हैं । इसलिए यह साफ देखा जा सकता है कि कभी-कभी मनुष्य अपने-आप को भूलकर पशु के समान व्यवहार करता है ।

1·2·3 अध्यापक एवं निबन्धकार :-

आचार्य द्विवेदीजी ने अपना जीवन एक अध्यापक के रूप में आरम्भ किया था और जीवन के अन्त तक अध्यापक ही बने रहे । व्यक्ति जिस क्षेत्र में कार्य करता है अक्सर उसी क्षेत्र के विषय में कहने का प्रयत्न करता है । शिक्षा कार्य से जुड़े होने के कारण उन्होंने उससे सम्बन्धित कई निबन्धों को लिखा जैसे - हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली, शिक्षा की सार्थकता आदि ।

13· ग्रन्थावली - 9 भाग, " अशोक का फूल " पृ· 21·

प्रभाकर माचवे जी, शुक्ल जी और द्विवेदी जी के निबन्धों की तुलना करते हुए कहते है कि --

" द्विवेदी जी के निबन्ध को पढ़ते समय बार-बार लगता है कि शाम के झुटपुटे में हम कोई पुराने महल का खंडहर देख रहे है, नाव पर से बाँसुरी सुनायी दे रहीं है और हम सफर हमसे जल्दी ही बिछुड़ने वाला है । शुक्ल जी विचारात्मक होने के चलते आदि से अंत तक एकतान रहते है । द्विवेदी जी संस्मरणात्मक होने के चलते कथाओं - अंतर्कथाओं से परिपूर्ण है । शुक्ल जी को पढ़ने से एक बौद्धिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है, द्विवेदी जी को पढ़ने से मानसिक भूख बड़ी त्वरा के साथ जागृत हो उठती है । " 14

आचार्य द्विवेदी जी के निबन्ध चाहे किसी भी विषय पर लिखे गये हो, सभी निबन्धों में एक निराली मस्ती, एक फक्कड़पन लक्षित होता है । विचार और व्यक्तित्व का एक जैसा ही लेखक देखने को बहुत कम मिलते है । द्विवेदी जी के साहित्य की यह खूबी है कि अनेक निबन्धों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि वे केवल निबन्धकार ही है ।

1·2·4 उपन्यासकार के रूप में द्विवेदी जी :-

निबन्धकार के रूप में तो द्विवेदी जी का व्यक्तित्व निखरा ही था, उसके साथ ही वे एक अच्छे उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हुए और उन्होंने केवल चार उपन्यास ही लिखे है । उनका सर्व प्रथम उपन्यास " बाणभट्ट की आत्मकथा " है, जिसे शान्तिनिकेतन में रहते समय लिखा था । इस उपन्यास को साहित्यिक क्षेत्र में इतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई कि इस रचना के लिए उन्हें " महावीर प्रसाद स्वर्ण पदक " से सम्मानित किया गया ।

14· आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - स्मृति धरोहर - लेख - शुक्ल जी और द्विवेदीजी

आचार्य द्विवेदी जी अपने उपन्यासों को गप्प की संज्ञा देते थे । ऐसा कह कर वे अपनी नम्रता का परिचय देते है । " बाणभट्ट की आत्मकथा " के प्रकाशन के साथ ही एक विवाद चल पड़ा था कि यह बाणभट्ट द्वारा लिखित आत्म-कथा का हिन्दी अनुवाद है । परन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने इतिहास की उन भूली हुई बातों को साकार किया है जो उनकी अपनी क्षमताओं को सार्थक बना सकी है । उन्होंने जो कहानी कही है वह एक ऐसे व्यक्ति की है जो उदात्त प्रेम की रक्षा करता है । इसके पात्र मुख्यत: बाण, निपुणिका और भट्टनी के बीच चलने वाली प्रेमकथा, उनकी भावनाएँ और उदात्तता, मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है ।

डा॰ उदय नारायण तिवारी के अनुसार --

" बाणभट्ट की आत्मकथा " में तो उनकी भी आत्मकथा है । उसमें उनके गुरू पंडित रामरतन ओझा एवं काशी के अनेक विद्वानों तथा द्विवेदी जी के सह-पाठियों का स्पष्ट रूप से दर्शन होते है । " 15

तिवारी जी की यह बात काफी स्तर तक ठीक लगती है क्योंकि द्विवेदी जी ने एक ऐसे व्यक्ति को नायक बनाया है जिसमें संयम्, संतुलन, उदार हृदयता, संवेदनशीलता और दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करने की अपूर्व क्षमता है । " बाणभट्ट की आत्म-कथा " का नायक प्रारम्भ से ही नारी के प्रति श्रद्धा भाव रखता है जैसे -

" मेरी मण्डली की स्त्रियाँ पुरूषों की अपेक्षा अधिक सुखी थी । बहुत छुटपन से ही मै स्त्री का सम्मान करना जानता हूँ । मै, स्त्री शरीर को देव मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ । " 16

---

15. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - स्मृति धरोहर - लेख -पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी - श्याम सुन्दर घोरा - पृ॰ 75॰

16. " बाणभट्ट की आत्मकथा " पृ॰ 28, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावल - भाग 1॰

कथाकार के रूप में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी मानव समाज के विकास की ऐतिहासिक - सांस्कृतिक कथा को कहते है । उनकी हर कथानक किसी-न-किसी उद्देश्य को लेकर चलती है । " बाणभट्ट की आत्मकथा " के बाद उन्होंने मध्ययुग के तंत्र-मंत्र आदि के वातावरण से सम्बन्धित " चारु चन्द्रलेख " नामक उपन्यास लिखा । यह उपन्यास एक प्रौढ़तर रचना है । डा॰ राम दरश मिश्र का कहना है कि --

" बाणभट्ट की आत्मकथा " सी गरिमा इसमें नहीं है । " [17]

आचार्य द्विवेदी जी ने इस रचना में अधिकतर सामाजिक समस्याओं को लेकर विचार किया है । इस उपन्यास के पात्र " सीदी मौला " में द्विवेदी जी के विचारों का प्रतीक बनकर सामने आया है । जैसे --

" वे हिन्दू - मुसलमान में कोई भेद नहीं मानते है और मौज में आकर नमाज भी पढ़ने वालों को भी फटकार देते है और संध्याकाल पूजा करने वालों को भी दुत्कार देते है, पुरे-अवधूत है, धर्म सम्बन्धी किसी भी नियम के पाबन्ध नहीं है और न किसी वेष-भूषा के प्रति ही आस्था या अनास्था रखते है । " [18]

द्विवेदी जी के उपन्यास का पूर्ण रूप से नयी भूमिका पर इतिहास पुराण को ध्यान में रखकर सर्जन किया गया है । नवल किशोर शर्मा के अनुसार --

" तान्त्रिक साधनाओं को लेकर लिखा गया, यह पहला उपन्यास है और परम्परा का अन्वेषण करते हुए लेखक ने जनतांत्रिक मानवतावादी दृष्टि को प्रतिष्टित किया है । " [19]

---

17. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्या - रामदरश मिश्र - पृ॰ 181.
18. ग्रन्थावली - भाग 1., " बाणभट्ट की आत्मकथा " पृ॰ 267 - 268.
19. हजारी प्रसाद द्विवेदी - डा॰ विश्वनाथ प्रसाद सिंह - लेख - चारु चन्द्र लेख - नवल किशोर शर्मा - पृ॰ 207.

इस उपन्यास में पायी जाने वाली तांत्रिक साधनाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है ।

उपन्यास " चारु चन्द्रलेख " लिखने के एक दशक बाद द्विवेदी जी फिर साहित्यिक इतिहास के पीछे मुड़ गये और " बासी को ताज़ा " बनाने के उद्देश्य से उन्होंने " पुनर्नवा " की रचना की ।

उनकी रचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि वे अनेक कवियों के साहित्य से प्रेरित थे, जो कई स्थानों पर दिखाई देता है " पुनर्नवा " में कालिदास और शूद्रक के साहित्य से प्रेरित बहुत सारी सामग्री मिलती है । डा॰ विद्यानिवास मिश्र के अनुसार --

" इस उपन्यास को पढ़ने पर प्राचीन इतिहास का विद्यार्थी अचकचा भी जायेगा कि कहाँ शूद्रक का मृच्छकटिका, कहाँ कालिदास, कहाँ लोरिकायनचन्दा के लोरिक, कहाँ बलिया में पंडित जी का गाँव दुबहेड़ और आस-पास की पुरानी ज़मीदारी हलदी और कहाँ पाटलिपुत्र, मथुरा, और उज्जैनी । पर द्विवेदी जी ने खूब जीड़ा, तीन-तीन क्या चार-चार शताब्दियों के इतिहास को सम्पीड़ित करके निचोड़ लिया और उसे बीस-पच्चीस नव सिरजे वर्षों के भाँड में अंजुरी - अंजुरी ढरका दिया । " 20

आचार्य द्विवेदी जी के " पुनर्नवा " उपन्यास पर सबसे अधिक प्रभाव शूद्रक के मृच्छकटिका नाटक का पड़ा है । इस उपन्यास की कथा में ऐतिहासिक-सांस्कृतिक तत्वों के अलावा मनोविज्ञान के तत्व भी मिलते हैं । जैसे नारी-पुरूष का सम्बन्ध और पात्रों के आपसी मानसिक द्वंद्वों के चित्रण और उनके व्यवहारों को दिखाने के लिए द्विवेदी जी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि अपनायी है । कुछ स्थानों पर पात्रों की बातचीत के माध्यम से कुछ ऐसे विषयों का विवेचन किया गया है जो शुद्ध रूप से मनोविज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं ।

20॰ उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी - डा॰बादाम सिंह रावत - संकलन - लेख - डा॰ विद्या निवास का पृ॰ 110॰

आचार्य द्विवेदी जी पाश्चात्य मनोविश्लेषण शास्त्र पर आधारित स्वप्नावस्था में मिलने-वाली इच्छा शक्ति को स्वीकार करते है और उनके अनुसार स्वप्न मिथ्या नहीं है । जहाँ के कई लोगों का विश्वास है कि मनुष्य अपनी दमित वासनाओं की ही काल्पनिक तृप्ति के रूप में स्वप्न में पाता है । जबकि उसमें कोई यथार्थ नहीं होता है ।

" पुनर्नवा " में " सुमेर काका " नामक पात्र के माध्यम से इस विचार को स्पष्ट भी किया है । जैसे --

" बिलकुल नहीं, तेरे बाप ने मुझे एक दिन बहुत-सी बातें समझानी चाही थी । वह मुझे बताना चाहते थे कि स्वप्न से कुछ-न-कुछ जाना जा सकता है । उनका तो विश्वास यह था कि स्वप्न में मनुष्य जो कुछ देखता है वही किसी-न-किसी वास्तविक परिस्थित का रूप ही होता है । परन्तु उनकी बात मेरी समझ में कभी नहीं आयी । बहुत से लोग जागते में भी सपना देखते है । वे काल्पनिक जगत का निर्माण करके अपने आप को भुलावा देते रहते हैं । मै भी किसी समय आर्यक (पात्र) के बारे में बड़े-बड़े सपने देखा करता था, परन्तु सब झूँठ है । बिटिया जागे का सपना सोये से भी कई अधिक झूठ है । " 21

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की अनेक रूचियाँ थी । वे संगीतकला, उधान कला, पाक कला, चित्रकला आदि में अपने मन को रमाते थे । इसके फल स्वरूप उनके उपन्यासों में साफ-साफ इन सबका उल्लेख भी किया है । " पुनर्नवा " में पात्र " मंजुला " के द्वारा ये बातें स्पष्ट हो जाती है कि आचार्य द्विवेदी जी चित्रकला के कितने मर्मज्ञ थे । जैसे --

" चीनांशुक के भीतर दुर्लभ कर्पूर काष्ठ की एक चौकोर पेटी थी । ऊपर के पारे पर मनोहर कल्पवल्ली अंकित थी । कदाचित मंजुला ने स्वंय अपने हाथ से उसे आंका था । उसमें मन:शिला, हिंगुल, हरिताल और गोरोचन से बने रंगों का प्रयोग किया गया था । " 22

---

21. ग्रन्थावली - भाग - 2. पुनर्नवा - पृ. 118.
22. - वही - पृ. 57.

अत: यह कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदी जी ने " पुनर्नवा " में अन्य बातों के साथ-साथ मनोविज्ञान का भी इच्छा के अनुसार प्रयोग किया है । इस उपन्यास के पात्रों के व्यवहार, अर्न्तद्वन्द्व, मन: चिन्तन और चरित्र-निर्माण में बाल - मनोविज्ञान, फ्रायड़ीयन काम-तत्व, उदात्ती कारण-तत्व, मूल प्रवृत्तियाँ आदि तत्वों का प्रयोग है ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का चौथा और अंतिम उपन्यास - " अनामदास का पोथा " है । यह अन्य उपन्यासों से भिन्न है जो बौद्धिकता और भावात्मकता के मेल से बना हुआ औपनिषदिक आख्यान है । " अनामदास का पोथा " उपनिषद कथावस्तु को अपने में समेटने वाला हिन्दी का प्रथम उपन्यास है । इतना ही नहीं, इस प्रकार औपनिषदिक क्षेत्र को उपन्यास की सीमा में लानेवाले आचार्य द्विवेदी जी प्रथम उपन्यासकार ठहरते है ।

डा॰ महीप सिंह के अनुसार - " वे आधुनिक भारत के उन इनेगिने मनीषियों में थे, जिन्होंने इस सम्पूर्ण देश की आत्मा को, इसकी सम्पूर्ण विविधता को, इसके मतभेदो, अन्तर्विरोधों को, सम्पूर्ण सहानुभूति के साथ समझा और पूर्वग्रह मुक्त होकर उसे रेखांकित करने का प्रयास किया । द्विवेदी जी के इस उपन्यास में उनके अनुसार साहित्यिक व्यक्तित्व की झलक ही प्रस्तुत नहीं होती बल्कि एक साक्षी बनकर उपस्थित हो जाती है । " 23

आचार्य द्विवेदी जी का यह उपन्यास रैक्व के भोलेपन और जाबाला के मूक प्रेम को दिखाता है । इस उपन्यास को मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा नहीं जाने पर भी इसमें बहुत सारे ऐसे दृश्य मिलते है जिनका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है । उपन्यास को आचार्य द्विवेदी जी ने बड़ी बारीकी और सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है । इसमें उन्होंने प्रेम की ओर लोक जीवन की समस्या को उठाया है । स्त्री-पुरुष के आकर्षण के रहस्य को उन्होंने अपने ढ़ंग से व्याख्यायित किया है ।

---

23. हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य - स॰ डा॰महीप सिंह - लेख - औपनिषदिक आख्यान : बनाम युगीन मानवीय सम्पृक्ति - डा॰ महीप सिंह - पृ॰ 187.

इस उपन्यास की भूमिका में उपन्यास के कथानक का साफ संकेत मिलता है जहाँ, कि " बाण भट्ट की आत्म कथा " और " चारु चन्द्र लेख " का कथा मुख रहस्यमय ही बना रहता है । यह अनामदास एक कल्पित नाम है । उपन्यास को कौतूहल पूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने के लिए अनामदास द्वारा प्रस्तुत पोथे का नामोल्लेख किया गया है । सोचने पर ऐसा लगता है कि प्राचीन संस्कृति का अध्येता द्विवेदी जी का मन ही अनामदास के रूप में प्रस्तुत हुआ है । उपन्यास, निबन्ध संग्रह, समालोचना के अलावा उन्होंने जीवनी और संस्मरण रवीन्द्रनाथ पर लिखा है । कुल चार ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है और दो पत्रिकाओं के सम्पादक भी रहे है । रवीन्द्रनाथ के साहित्य से अधिक प्रभावित होने के कारण, उनकी कुछ रचनाओं का अनुवाद भी किया है । इसके साथ-साथ साहित्य की हर विधा में अपनी छाप छोड़ी है ।

आचार्य द्विवेदी जी की एक विचित्र रूप की शैली है जिसमें खुद रचना करते हुए भी किसी दूसरे की रचना को प्रकाशित करने की बात कहते है । अगर द्विवेदी जी इस प्रकार की शैली में लिखते है तो उसमें उनकी कोई गलती नहीं है, क्योंकि यह अक्सर देखा जाता है कि महान व्यक्ति अपने कर्म करने के बाद फल की अपेक्षा नहीं करते है । बल्कि तटस्थ रहते है । यही बात आचार्य द्विवेदी जी में भी मिलती है । एक खूबी उनकी शैली की यह भी है कि वे अपने लेखन - कार्य में अपने-आप को भी जोड़ते है । वही साहित्यकार महान माना जाता है जो अपनी लेखन शैली में अपना व्यक्तित्व जोड़े और यह कोई आसान कार्य नहीं है । वास्तव में लेखक केवल विषय को ध्यान में रखकर अपना लेख लिखता है और अपने-आप को लेख से अलग रखता है ।

1·3 निष्कर्ष :-

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को मनोविश्लेषणात्मक आधार भूमि पर परखने के बाद निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त अनेक पक्ष प्रभावित करते है जिनमें परिस्थित, वातावरण, आदि का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है । ये ही उनको अच्छा या बुरा बनाते है ।

आचार्य द्विवेदी को साधारण व्यक्तियों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है । उनका चिंतन, शैली, व्यवहार आदि के बारे में जानकर कहा जा सकता है कि वे एक तटस्थ और उच्च विचार वाले व्यक्ति है । विनोदी, सरल, निष्कपट और उदार स्वभाव के व्यक्ति थे । युंग के व्यक्तित्व प्रकार (personality types) के अनुसार इनके व्यक्तित्व को बाहिर्मुखी (extrovert) श्रेणी के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

आचार्य द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में दो पक्षों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । एक तो गहन अध्ययन और उनकी जिज्ञासात्मक प्रवृत्ति और इसके अलावा जाने माने विद्वान लोगों का प्रभाव । इसी से वे साहित्य के क्षेत्र में अपना स्व-अस्थित्व की छाप छोड़ सके । उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह समाज को ध्यान में रखकर मानव कल्याण के लिए ही लिखा है । इसी सन्दर्भ में आचार्य द्विवेदी जी " कल्पलता " में कहते है —

" मनुष्य की सर्वोत्तम कृति साहित्य है और उसे मनुष्य पद का अधिकारी बनकर रहने के लिए साहित्य ही एक मात्र सहारा है । यहाँ साहित्य से हमारा मत-लब सब तरह की उसकी सात्विक चिन्तन धारा से है । " 24

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी बहुमुखी प्रतिभावाले व्यक्ति थे । उन्होंने कई विधाओं में अपनी रचनाएँ की । इतना ही नहीं वे बहुभाषी थे और साथ ही भार-तीय संस्कृति, कला कौशल, मध्ययुगीन साहित्य और भारतीय इतिहास के शौकीन थे । वे किसी भी देश की संस्कृति को सम्पूर्ण मानवता की आधार-शिला के रूप में स्वीकार करते थे ।

---

24. कल्पलता - मनुष्य की सर्वोत्तम कृति साहित्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ 148.

उनकी साहित्यिक रचनाओं को देखने से लगता है कि सांस्कृतिक आदर्शों से भरी हुई है । परन्तु उनका समग्र चिंतन आधुनिक समस्याओं का समाधान खोजने की दिशा की ओर है । ऐसे उच्च विचार वाले लेखक बहुत विरल है । आचार्य द्विवेदी जी आज हमारे बीच नहीं है फिर भी उनका साहित्य, उनकी यादें और शिक्षाएँ उन्हें अमर बनाये रखी है ।

द्वितीय अध्याय

प्रमुख मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी

के उपन्यासों से अनुप्रयुक्त मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

2.1.0 युग और शास्त्रों की प्राथमिकता :-

मनुष्य में आन्तरिक और बाह्य परिवर्तन केवल उस समय आया जब 16 वी शताब्दी में पुनर्जागरण की शुरूआत हुई जिसके कारण संसार के हर क्षेत्र को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तौला जाने लगा, परन्तु पुनर्जागरण के पहले समाज, धर्म और आध्यात्म के नियमों से बंधा हुआ था और लोगों में तर्क-वितर्क करने की शक्ति भी नहीं थी । उस पर किये जाने वाले हर तरह के अन्यायों को चुपचाप सहता रहता था । जब मनुष्य सोचने-विचारने और हर एक कार्य के पीछे, उसके होने के कारण को खोजने लगा, तभी से विज्ञान का विकास शुरू हुआ ।

विज्ञान पूर्ण रूप में न अवतरित होकर कई शाखाओं में बंट गया और प्रत्येक युग एक विशेष शाखा के लिए प्रसिद्ध हुआ । जैसे 16 वीं शताब्दी खगोल, भूगोल तथा शरीर शास्त्र का युग था । 17 वीं शताब्दी भौतिक तथा रसायनशास्त्र का युग था । 18 वीं शताब्दी में अर्थ तथा राजनीतिक विज्ञान को बढ़ावा मिला । प्राणीशास्त्र तथा समाजशास्त्र का अवतरण 19 वीं शताब्दी में हुआ तो 20 वी शताब्दी मनोवैज्ञानिक युग के रूप में जाना जाता है ।

आज के मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर अधिक जोर पड रहा है क्योंकि उसे जीवन के हर क्षण में किसी न किसी प्रकार के संघर्ष का सामना करना पड़ता है । क्योंकि मानसिक स्थिति का सीधा सम्बन्ध शरीर से जुड़ा होता है ।

विकास की कोई भी शाखा हो वह जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है । जहाँ तक कि साहित्य भी इससे नहीं बच पाया और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की की झलक साहित्य की हर विधा में देखने को मिलती है । साहित्य को कई महान विचारकों ने प्रभावित किया है । उदाहरण के लिए - कार्ल मार्क्स, फ्रायड, जॉ पाल

सार्त्र, कामू और नित्से आदि ।

पहले ही कहा जा चुका है कि 20 वी शताब्दी मनोविज्ञान का युग माना जाता है । यह विज्ञान की नयी शाखा होते हुए भी बहुत ही सक्रिय और शक्तिशाली है । इसका अर्थ यह नहीं कि इसके पूर्व मनोविज्ञान का साहित्य से कोई वास्ता नहीं था । इन दोनों का सम्बन्ध बहुत ही पुराना है । जैसे कि आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक के सभी कवियों और साहित्यकारों की कृतियों में लक्षित होता है । जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है इसमें केवल सौन्दर्यनुभूति ही नहीं बल्कि मनोविकार और विचारों का भी समावेश होता है । डा॰बलदेव उपाध्याय के अनुसार " साहित्य में मनुष्य का जीवन ही नहीं बल्कि जीवन की कामनाएँ जो अनन्त जीवन में पूरी नहीं हो सकती वे भी निहित रहती है । " [1]

फ्रायड के अनुसार साहित्यकार अपनी दमित वासनाओं को उदात्तीकृत रूप में साहित्य के प्रस्तुत करता है और पाठक भी साहित्य के द्वारा अपनी तिरस्कृत कामनाओं को उदात्त रूप प्रदान कर लेते हैं ।

2·2·0· आधुनिक युग और मनोविज्ञान :-

2·2·1 आधुनिक मनोविज्ञान :-

आधुनिक मनोविज्ञान का अगर इतिहास देखा जाय तो वह सौ वर्षो से भी कम का होगा । मनोविज्ञान की एक प्रसिद्ध उपशाखा जिसे मनोविश्लेषण कहते है वह अपने सीमित अर्थ में आधुनिक है ।

1· भारतीय साहित्य शास्त्र, लदेव उपाध्याय पृ· 571·

" मनोविज्ञान " का अंग्रेजी पर्याय " साइकॉलाजी " है । यह शब्द दो ग्रीक शब्द " साइकी " (psyche-soul) और " लॉगॉस " (logos-discourage) से बना है । इससे पहले मन के विकास को मनोविज्ञान के नाम से जाना जाता था । परन्तु बाद की परिभाषा में परिवर्तन आने के कारण बीसवी शताब्दी में इसे व्यवहार का विज्ञान (science of behaviour) या " व्यवहार का वैज्ञानिक अनुसंधान " नाम से जाना जाता रहा है । परिभाषा भले ही कुछ भी हो परन्तु मनोविज्ञान का लक्ष्य विभिन्न दिशाओं में मानव की समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करना है ।

2·2·2 साहित्य पर मनोविज्ञान का प्रभाव :

साहित्य में विकसित अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्तों में से कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद ने साहित्य के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित किया है जैसे चिकित्सा गृहों, कारखानों, स्कूलों तथा कलेजों, कार्यालयों और युद्ध आदि ।

2·2·3 मनोविज्ञान का क्षेत्र : एक विश्लेषण :-

एक सामान्य प्रश्न हमेशा उठता है कि मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण और मनश्चिकित्सा में क्या अन्तर है । यद्यपि ये सब एक ही पथ के पथिक है और एक ही समस्या का समाधान ढूंढते है । फिर भी इनमें अन्तर देखने को मिलता है ।

मनोविज्ञान (psychology) का अध्ययन क्षेत्र केवल स्वस्थ मानव से होता है । इसमें मनोवैज्ञानिक केवल यही देखना और जानना चाहता है कि मनुष्य किस तरह देखता है, सुनता है आदि । इतना ही नहीं क्या यह सब केवल शरीरिक क्रियायें मात्र है या इनका कोई मस्तिष्क से भी संबन्ध है ।

मनोविज्ञान की कई अन्तर निहित शाखाएँ है परन्तु मनोविश्लेषण (psycho-analysis) का प्रभाव कुछ अधिक ही था । मनोविश्लेषण एक तरह की मानसिक चिकित्सा है । मानस-व्याधियों का निवारण करना इसका लक्ष्य होता है । यह एक विशेष पद्दति है । जिसके आविष्कार का श्रेय सिगमण्ड फ्राइय (sigmund Freud) को दिया जाता है । इस पद्दति में चिकित्सक मरीज़ से बातें करता है (free association) जिससे उसकी आदतों को, उसके व्यवहारों की विशेषताओं को, उसके जीभ से फिसली बातों को, शब्दों के प्रयोग को, क्रियापद्दतियों तथा स्पप्नों का अध्ययन करता है और उसके अचेतन में छिपी बातों को ऊपर अर्थात चेतन स्तर पर लाने की चेष्टा करता है । इस तरह व्यक्ति को उसके सच्चे स्वरूप का ज्ञान करा सकते है ।

मनश्चिकित्सा, मनोविज्ञान की ही उपशाखा है । इसका भी सम्बन्ध मानव मनोविज्ञान से ही है । परन्तु यह मनुष्य के मानसिक अस्वस्थता की दृष्टि से विचार करता है । इस शाखा का सिद्दान्त यह है कि रोग या विकृति की निवृत्ति ही मानसिक स्वस्थता है ।

मनोविज्ञान के इन दोनों अन्तरनिहित शाखाओं के अलावा कई और भी शाखाएँ है जो अपने अपने क्षेत्र में महत्व रखती है ।

2.2.4. साहित्य सृजन और मनोविज्ञान :-

साहित्य का लेखन कार्य, नयी दिशाओं मे किया जा रहा है जिसमें मनो-विश्लेषणात्मक अध्ययन कुछ नये सिरे से हो रहा है । मानव-मन को सभी कलाओं का जनक माना जाता है । अत: मनोवैज्ञानिक अध्ययन को साहित्य के अध्ययन का माध्यम बनाना- किसी सीमा तक उचित ही नहीं, आवश्यक भी है । डा॰ रामकुमार वर्मा के अनुसार " मानवमन मनोविज्ञान का विश्लेष्य है । यही मन भावों या मनोवेगों का आश्रय मनोविकारों का स्रोत एवंम अनुभूतियों का कोष है । साहित्य इन्ही मनो - विकारों और अनुभूतियों की (रोचक) कथा है । " 2

• हिन्दी की नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - मिथलेश रोहतगी - पृ॰ -

साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन को साधारणतः मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन के रूप में ही माना जाता है । साहित्य का मनोविज्ञान से गहरा सम्बन्ध है । क्योंकि लेखक हर प्रकार की वस्तुओं को अपनी काल्पनिक दृष्टि से देखता है ।

2.3.0 साहित्य की प्रमुख विधाएँ और मनोविज्ञान :-

आधुनिक साहित्य में प्रमुखतः मानव मन की गहराई तक पहुँच कर उसकी ग्रन्थियों को सामने लाने के सबल प्रयत्न हो रहे है । इस प्रकार के प्रयास को हर प्रक्रिया में और हर विधा में स्पष्ट देखा जा सकता है ।

2.3.1 काव्य और मनोविज्ञान :-

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार अचेतन मन से प्रभावित होता है । व्यक्ति के मन में हमेशा किसी न किसी प्रकार के संवेगों (feelings) की उत्पत्ति होती है और इनके उत्पन्न होने का कारण बाहरी परिस्थितियाँ होती है । सामान्यतः व्यक्ति अपनी दमित इच्छाओं को कई माध्यमों से बहार निकालता है जिसमें साहित्य भी एक माध्यम है । साहित्य की रचना कई विधाओं में होती है जिनमें काव्य एक विधा है ।

काव्य के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि यह जीवन का अनुकरण मात्र है जिसमें जीवन का सत्य प्रतिबिंबित होता है । काव्य में प्रमुख रूप से भावना और कल्पना का योग होता है और इन दोनों का सम्बन्ध मन से होता है। मन में भावों का अवतरण होता है जो कल्पना के द्वारा साकार रूप धारण करने के लिए लगातार कोशिश करते है । कवि अपनी इन भावनुभूतियों को ही शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत कर अपने मन की इच्छा को पूरा करता है । इसलिए हर एक कवि दूसरे कवि से अलग होते हुए भी उनके भाव मिलते है ।

प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी फ्रायड के अनुसार - " व्यक्ति काम सम्बन्धी भावनाओं को प्रकट करने के लिए विभिन्न साधनों को अपनाता है तथा इन साधनों के द्वारा अपनी काम भावनाओं को व्यक्त करके आन्तरिक आनन्दानुभूति प्राप्त करता है । " 3

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार - " यदि काव्य की तह में जीवन का कोई सच्चा मार्मिक तक्ष्य, सच्ची भावनुभूति नहीं तो इसका मूल्य मनोरंजन करने वाली सजावट या खेल तमाशे के मूल्य से कुछ भी अधिक नहीं । " 4

अत: कहा जा सकता है कि आन्तरिक अनुभूति और मन का सम्बन्ध बहुत गहरा होता है । इसलिए काव्य और मनोविज्ञान का सम्बन्ध अत्यन्त निकट है ।

2.3•2 नाटक और मनोविज्ञान :-

जैसे ऊपर कहा गया है कि काव्य की रचना कर कवि अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है उसी तरह नाटककार अपने पर बीती या अपनी कल्पना शक्ति से नाटक की रचना करता है । नाटक में पात्रों को इतनी सजीवता से दर्शाने की कोशिश करता है कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह सत्य है । क्योंकि पात्र अपने निजी मानस की तरलता को दिखलाने का प्रयत्न करते है । कला का मुख्य उद्देश्य मानवमात्र को मनोरंजन करना तथा ज्ञान प्रदान करना है । जिसमें नाटक भी एक साधन है । मानव किसी वस्तु अथवा भाव से प्रेरित होकर प्रसन्न या अप्रसन्न भी होता है ।

3• आधुनिक मनोविज्ञान और सूर काव्य, कमला पृ• 229•

4• चिन्तामणि - भाग - 2• काव्य में अभिव्यंजनावाद - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ• 170•

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मनस्तृप्ति में ही लोकरंजन होता है । वास्तव में यह तथ्य है कि मानव मे कुछ विशिष्ट प्रेरणाएँ होती है । जो निश्चत चीज को देखकर उत्तेजित हो उठती है । जैसे नाटक में दुख के दृश्य को देखकर दर्शक भी दु:ख का अनुभव करता है और हँसी मजाक के दृश्य को देख हँसने लगता है । काव्य-शास्त्र की भाषा में इसे साधारणीकरण कहते है । यह वह स्थिति है जहाँ पात्र और दर्शक की भावनाएँ एकाकार हो जाती है ।

नाटक और मनोविज्ञान का सम्बन्ध इसीलिए गहरा है क्योंकि नाटक के पात्र के मन में हो रहे संवेगों को प्रत्यक्ष रूप से दिखाने का प्रयत्न करते है ।

सिगमण्ड फ्रायड ने कला और साहित्य की विधाओं के बारे में विचार करते हुए अपने लेख (psychopathic characters on the stages) लिखा । इस लेख में विशिष्ट कला रूपों के बारे में मुख्यत: नाटक और दर्शकों पर उसका प्रभाव और पात्र अपने लक्ष्य की पूर्ति किस प्रकार करते है इसको दिखाने की कोशिश की है ।

> Ernest Jones writes that - "David Siever's detailed study of the extraordinary influence Freud's work has had on the American drama from 1912 onward deserves special mention. Freud had early on, in 1907, given an example of how useful actors could find the carrying out of unconscious "symptomatic actions".[5]

---

[5] Sigmund Freud: Life and work - The Last Phase (1924-1939) by Ernest Jones, p.455

2.3.3 कहानी और मनोविज्ञान :-

कहानी का संबन्ध अधिकतर मानव जीवन के यथार्थ से जुड़ा होता है । कहानी के माध्यम से विभिन्न परिस्थीतयों के बीच मानव को देखने का सच्चा प्रयास होने लगा है । प्रेमचन्द ने इस सन्दर्भ में ठीक ही कहा है कि "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो ।"[6] मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के प्रभाव में आनेवाली कहानियाँ कुछ और आगे बढ़ कर मानव के अनुभूतियों और मन में उभरने वाले द्वन्द्वों, संघर्षों और मानसिक कुण्ठाओं को मनोविश्लेषणात्मक आधार पर प्रस्तुत करती है ।

प्रेमचन्द, प्रसाद जैसे कहानीकारों ने हिन्दी साहित्य में मानव मन के चित्र को उपस्थित किया है । इन दोनों की परंपरा किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त या सिद्धान्तों को लेकर चलनेवाली नहीं है । जैनेन्द्र, इलाचन्द्रजोशी और अज्ञेय आदि की कहानियाँ स्पष्ट रूप से मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में लिखी गयी है । जैनेन्द्र की कहानियों में नारी की व्यक्तिगत समस्याओं और मानसिक संघर्षों का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत है ।

इलाचन्द्रजोशी पर तो मनोविज्ञान का अधिक प्रभाव है। आर्थिक राजनैतिक और वैयक्तिक समस्याओं से रहस्य की ओर ले जाते है और इनकी कहानियाँ मानसिक धरातल की होती है ।

नई पीढ़ी की मनोविज्ञानिक कहानी में नवीन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रभाव अधिक दिखाई देता है । इस पीढ़ी में राजेन्द्र प्रसाद, मोहन राकेश, कमलेश्वर आदि उल्लेखनीय कहानीकार है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आधुनिक युग में साहित्य की हर विधा को मनोविज्ञान ने प्रभावित किया ।

---

6. मानसरोवर - प्रथम भाग - प्रेमचन्द - पृ. 9.

2.3.4 उपन्यास और मनोविज्ञान :-

यह कहना कठिन है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सृजन कब से शुरू हुआ । परन्तु कई आलोचकों का मानना है कि सेमूयल रिचर्डसन को अंग्रेजी का प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में मान्यता प्राप्त है । इसका कारण यह है कि रिचर्डसन ने अपने सारे उपन्यासों की रचना पात्रात्मक शैली में की है ।

बीसवी शती के आरंभ में जो मनोविश्लेषण का प्रभाव जोरदार रूप से पश्चिम के साहित्य पर पड़ा उसने वहीं तक सीमित न रहकर दूसरे देशों के साहित्य को भी प्रभावित किया । उदाहरण के लिए उसका प्रभाव हिन्दी के उपन्यासों में देखने को मिलता है ।

डा॰ धनराज मानधाने ने हिन्दी के प्रारम्भिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को ढूँढ़ने का प्रयास किया है । उपन्यासकार तो अपने युग का विचारक होता है । वह अपने समय के बारे में सत्य का चित्रण आदर्श की स्थापना करने की कोशिश करता है । उपन्यासकार चाहता है कि वह किसी-न-किसी प्रकार से पाठक के मन को सुख पहुँचाये । इसलिए वह समान्य लोगों की रूचि को ध्यान में रखते हुए अपनी रचना करता है । उपन्यासों को ध्यान से पढ़ने से पता चलता है कि मनोविज्ञान के तथ्य अधिकांश उपन्यासों में देखने को मिलते हैं । परन्तु हर एक उपन्यास को मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है । उन्ही उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के अन्तर्गत विद्वानों और आलोचकों ने रखा है जो मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित होते है ।

डा॰देवराज के अनुसार " मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार विषय को महत्व नहीं देते, जबकि भट्टलोलट, मैथ्यू आर्नाल्ड और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विषय को ही विशेष महत्व देते हैं । विषय जटिल हो या सरल और नीरस हो या सरस मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इस बात की परवाह नहीं की जाती, । अर्थात् विषय को विशेष महत्व नहीं दिया जाता । उसकी परवाह किये बिना ही यही मनोविज्ञान के विषय है

जैसे - एक प्रेमी की दो प्रेमिकाएँ, दो प्रेमिकाओं का एक प्रेमी, समाज का निराहृत व्यक्ति का चित्रण, बालकों के विशेषत: ज्येष्ठ कनिष्ठ या इकलौते बालकों के क्रिया-कलापों का वर्णन, प्रचलित सामाजिक प्रथाओं और रूढ़ियों के विरूद्ध क्रान्ति करने वाले पात्र, अकर्मणाय आत्मलीन तथा हाथ पर हाथ धरे कल्पना जगत के प्राणी, परस्पर विरोधी आचरण निरत पात्र, किसी विशिष्ट मनोवृत्ति से संचालित न होकर एक वीर और दूसरे क्षण कायर की तरह आचरण करने वाले व्यक्ति आदि के क्रिया कलाप ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के विषय है । " 7

सामान्यत: यह प्रश्न उठता है कि उपन्यासकार को मनोविश्लेषण की क्या जरूरत होती है ? थोड़ा बहुत सोचने - विचारने पर लगता है कि पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए इसकी जरूरत पड़ती है । पात्र के अचेतन में छिपी बातों को चेतन स्तर पर ला कर ही व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है । अगर उपन्यासकार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को ध्यान में न रखकर रचना करता है तो भी उसके उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है । इसका कारण यह है कि मनोविज्ञान तो वह विज्ञान है जो मनुष्य के ईद-गिर्द में ही घूमता है और उपन्यास की कहानी सामान्यत: मनुष्य के साथ ही जुडी होती है । इसलिए कहा जा सकता है कि केवल उपन्यास का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण साहित्य का मनोविज्ञान से सम्बन्ध होता है ।

सफल मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार उसे माना जाता है जो अपने व्यक्तित्व के प्रति भी तटस्थ मनोवैज्ञानिक दृष्टि रखता है और हानि-लाभ से ऊपर उठकर वह अपनी मूल-प्रवृत्तियों को पहचान ने का प्रयत्न करता है । ऐसा उपन्यासकार सामान्यत: वही है जो तटस्थ दृष्टि वाला हो और जिसमें अचेतन को चेतन स्तर पर लाने की क्षमता हो तथा दमित इच्छाओं की ग्रंथियो को खोल सकता है ।

---

7. उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी : मूल्याकन - डा. सुधीर कुमार - पृ. 36.

2.4. हिन्दी उपन्यास और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त :-

हिन्दी उपन्यासों पर पश्चिमी विचारधाराओं का प्रभाव लगातार पड़ता रहा जिनमें मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों में प्रमुख रूप से फ्रायड, एड्लर और युग आदि का प्रभाव कुछ अधिक ही दिखाई पड़ता है । हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में व्यक्ति की असाधारण चित्तवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में जैनेन्द्र कुमार इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, डा॰देवराज आदि को प्रतिष्ठा मिली है ।

सामान्य तौर पर हिन्दी उपन्यासों में प्रयोग में लाये जाने वाले मनो - वैज्ञानिक सिद्धान्त कुछ इस प्रकार है --

2.4.1 फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त :-

उन्नीसवी शती के अन्त में आधुनिक मनोविज्ञान नें मानव के असामान्य व्यवहारों से सम्बंधित सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया । इसका श्रेय सिगमण्ड फ्रायड को दिया ही जाता सकता है ।

फ्रायड ही पहले व्यक्ति थे जिसने सर्वप्रथम यह साबित कर दिखाया कि बाल्यावस्था में बीते अच्छे और बूरे दिनों का प्रभाव व्यक्ति के जीवन के अंत तक बना रहता है । उन्होंने अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व (personality) से सम्बधीत कई मुख्य बातें कहीं है । उनके मुख्य सिद्धान्त कुछ इस प्रकार है जिनके आधार पर हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन किया जा सकता है ।

व्यक्तित्व संरचना (structure of personality)

फ्रायड के अनुसार मानसिक संस्था के तीन भाग होते है वे है -
1. इदम् (id) 2. अहम् (ego) और 3. पराहम् (super ego)

इदम् (id) :-

अचेतन मन में इदम् का निवास स्थान माना जाता है । शरीर से सम्बन्धित समस्त कार्यों को प्रेरणा देने वाला स्रोत यहीं है । इदम में विभिन्न रूपी इच्छाऐं भरी होती है । इसका एक लक्ष्य होता है कि जो इच्छा प्रबल होकर आती है उसकी पूर्ति हो । यह समाज के नियमों से भी नहीं डरता है । वह मनुष्य को उसी दिशा में कार्य करने के लिए उत्तेजित करती है जिससे उसके अचेतन में निहित विभिन्न प्रकार की इच्छाओं, प्रेरणाओं, वासनाओं की तुरन्त सन्तुष्टि हो । इदम् की माँग की प्रधानता शरीर से सम्बन्धित मूल प्रवृत्तियों से होती है और यह निरंतर चलता ही रहता है ।

अहम (ego) :-

अहम् या इगो इदम् का ही विकसित रूप है । मन को तीन स्तरों में बाँटा गया है जैसे - अचेतन, अवचेतन और चेतन । इन तीनों में ही अहम संचार करता है । यह व्यक्तित्व का वह भाग है जो तर्क और विवेकपूर्ण होता है । अहम् (इगो) को शक्ति का संचरण इदम् ही करता है । फ्रायड के अनुसार अहम् को तीन तरह के कार्य करने पड़ते है । पहला तो बाहरी दुनिया के सामाजिक और धार्मिक नियमों को ध्यान में रखना होता है । दूसरा इदम् की इच्छा पूरी करनी पड़ती है और तीसरा नैतिक-मन (super ego) की मर्यादा का मान भी रखना होता है ।

नैतिक विवेक या सुप्राहम (super ego) :-

नैतिक विवेक या सुप्राहम का कार्य क्षेत्र भी अहम की तरह मन के तीनों स्तरों से सम्बन्धित है । नैतिक विवेक में अविवेकता का अभाव होता है । अहम, इदम और नैतिक विवेक एक दूसरे पर निर्भर होते है ।

मनोविज्ञान कोश के अनुसार नैतिक विवेक की परिभाषा कुछ इस प्रकार है - " एक प्रकार से अन्त:करण के पर्याय के रूप में हुआ है नैतिक मन प्राय: बलि होता है और व्यक्तित्व का प्रमुख निर्धारिक है । इसी से मानव की समस्त क्रियाओं की आलोचना नैतिकता के आधार पर होती है और व्यक्ति अनुचित कार्य करने से दूर भागता है । इसकी नीति की भावना कठिन और कठोर है । इसका प्रमुख इदं (id) और अहं (ego) दोनों पर रहता है । सुप्राहम का विकास अंह से होता है - यह अहं की क्रियाओं का प्रतिफल है । सुप्राहम के ही कारण व्यक्ति के आभ्यंतरिक क्षेत्र में अपराध भाव बनता है, उसे अपनी मातृ-पितृ कामेच्छा (Oedipus desire) के बारे में ज्ञान नहीं हो पाता, न यह कि उसमें अपने सगे-सम्बन्धी के प्रति उभयभावित (ambivalence) है, इसका ज्ञान हो पाता है । सुप्राहम् की प्रभुता अधिक होने पर प्राय: व्यक्तित्व में पूर्णत: विच्छेद हो जाता है और व्यक्ति रोग का आखेट बनता है क्योंकि इंद की प्रकृत इच्छाएँ मानव की स्वाभाविक माँग है और उनकी तुष्टि व्यक्तित्व और व्यवहार में समायोजन के लिए आवश्यक है । जब सुप्राहम् निर्बल रहता है अथवा इसकी प्रभुता इदं पर नहीं रहती, व्यक्ति प्रकृत इच्छा का दास बन असामाजिक क्रियाएँ सम्पादन करता है । सुप्राहम, अहं और इदं का परस्पर समायोजन - समझौता सन्तुलित व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है । "[1]

---

1. मानविकी परिभाषिक कोश - मनोविज्ञान खण्ड - पद्मा अग्रवाल - पृ. 264.

मन ﴾ स्थल रूपरेखीय पहलू ﴿ : अचेतन, अवचेतन और चेतन :

अचेतन (unconscious) :

फ्रायड के अनुसार मन के स्थल रूपरेखीय पहलू के तीन भाग होते है । वे है - अचेतन, अवचेतन और चेतन । इन तीनों में अचेतन को फ्रायड़ ने अधिक महत्व दिया । इसका कारण यह है कि मन का सबसे अधिक भाग अचेतन होता है और सबसे कम भाग चेतन का होता है । प्रेत्येक व्यक्ति के शरीरिक और मानसिक क्रियाओं का कारण अचेतन मन माना जाता है ।

अचेतन का सम्बन्ध मनोविश्लेषण में स्मृति से किया जाता है । दूसरे शब्दों में इसे स्मृतियों का खजाना माना जाता है । अचेतन स्तर में सुरक्षित बातें अवचेतन से होती हुई चेतन स्तर पर आती है । अगर अचेतन स्तर पर छिपी हुई इच्छाएँ परिष्कृत हो कर चेतन स्तर पर आने में असमर्थ हो जाये तो व्यक्ति में ग्रन्थि का उद्‌भव हो जाता है, जिसके कारण मनुष्य मानसिक रोगी हो जाता है ।

अवचेतन (sub-conscious) :

मानसिक प्रक्रियाऐं और घटनाएं पूर्ण रूप से चेतन स्तर पर नहीं होती है परन्तु चेतन के बहुत निकट अवचेतन रहती है । किसी भी क्षण उत्तेजना मिलने पर चेतना के स्तर पर आ जाती है । जैसे किसी समस्या के प्रस्तुत होते ही उससे सम्बन्धित अनेक स्मृतियाँ या विचार चेतन स्तर पर आ जाते हैं ।

चेतन (conscious) :

चेतन मन की परिभाषा मनोविज्ञान कोश में इस प्रकार दी गयी है - " चेतन मानसिक प्रक्रियाओं (mental processes) का समूह है । मन के इस स्तर को समय और परिवेश का बोध रहता है, इसमें तर्क और विवेक की क्षमता होती है । अहम् (ego) और पराहम् (super ego) चेतन मन के ही अंग होते है । " 10

फ्रायड़ का स्वप्न सिद्धान्त (Freud's Dream Theory)

स्वप्न सभी व्यक्ति देखा करते है । परन्तु असामन्य मनोविज्ञान में स्वप्न का एक विशेष महत्व है । स्वप्न दो तरह के होते है - सुखद और दुखद ।

फायड़ का स्वप्न सिद्धान्त (dream theory) विशेष रूप से महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध है । उनके अनुसार स्वप्न का सम्बन्ध अचेतन में दमित इच्छाओं से होता है । दमित इच्छाएँ अचेतन स्तर में आकर समाप्त नहीं हो जाती बल्कि वे अवसर ढूँढ़ती रहती है तथा मौका पाते ही बाहर आने की कोशिश करती है । फ्रायड़ के स्वप्न सिद्धान्त को " इच्छापूर्ति का सिद्धान्त " भी कहा जाता है क्योंकि स्वप्नों के पीछे एक कारण होता है जो सार्थक और उपयोगिता विद्यमान करती है ।

स्वप्न के अलावा दिवास्वप्न भी होते है । इसमें व्यक्ति दिन में ही उन चीजों की कल्पना करता है जो उसके निजी जीवन में पूरे नहीं हो पाये हो । मनोविज्ञान कोश के अनुसार - " तर्कमुक्त स्वछन्द कल्पना । यह व्यक्ति की अतृप्त इच्छाओं (ungratified wishes) की अभिव्यक्ति का एक साधन है ।

---

10. मनोविज्ञान का पारिभाषिक शब्दकोश - निर्मला शेरजंग - पृ. 34.

व्यक्ति अपनी कल्पना का स्वयं नायक (hero) होता है, सुखी सम्पन्न या दुखी पीड़ित । दिवास्वप्न में व्यक्ति यह जानता है कि उसका स्वप्न कल्पना है, वास्तविकता (reality) नहीं । व्यक्ति को जब यह ज्ञान नहीं रहता तो उसके दिवास्वप्न में असामान्यता (abnormality) आ जाती है और उसे आत्मरत चिन्तन (autistic thinking) कहते है । " 11

व्यक्तित्व विकास के स्तर (Development of Personality)

फ्रायड़ ने व्यक्तित्व संरचना (structure of personality) के साथ व्यक्तित्व विकास (development of personality) से सम्बन्धित सिद्धान्त भी बनाये है । वे इस प्रकार है -- मौखिक अवस्था (oral stage) गुदा परित्याग (anal stage) शैशनावस्था (phallic stage) अव्यक्तता अवस्था (latency stage) और जनन अवस्था (genital stage) इसी के अन्तर्गत उन्होंने पितृ-मनोग्रंथि (electra complex) मातृ मनोग्रंथि (Oedipus complex) के बारे भी लिखा है।

इन सब के अलावा भी उन्होंने तात्रिकताप आदि सिद्धान्त बनायें ।

2.4.2 एलफ्रेड एड़लर के वैयक्तिक मनोविज्ञान (Alfred Adler's Individual Psychology)

एड़लर पहले फ्रायड़ के अनुयायी थे परन्तु वे बाद में फ्रायड़ के लिबिड़ो (Libido) से असहमत होने के कारण उनसे अलग होकर अपनी विचारधारा को प्रतिपादित किया जिसे वैयक्तिक मनोविज्ञान के नाम से जाना जाता है । एड़लर के कुछ प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार है ।

---

11. मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश - निर्मला शेरजंग - पृ. 40.

हीन भावना ग्रन्थि और प्रतिमूर्ति : (Inferiority complex and compensation)

एड्लर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति मे किसी-न-किसी प्रकार की हीन भावना होती है । समान्यत: व्यक्ति में अनेक दोषों और अभावों का भण्डार होता है । इसलिए व्यक्ति अपने अभावों की पूर्ति करने के लिए कोई-न-कोई तरीका खोज निकलता है । उनका विचार है कि हीन भावना (inferiority complex) कोई एक आध दिन में न उभरती है । बल्कि बचपन में ही बालक अपनी दुर्बलताओं और कमियों को जान लेता है । इसका पता चलते ही अपनी कमीयों को दूर करने की कोशिश करने लगता है ।

महद्भाव : (Superiority Complex)

एड्लर ने हीन भावना के साथ-साथ महद्भाव पर भी विचार किया है । मनोविज्ञान की कोश के अनुसार – " आत्मप्रदर्शन (self-display) पर अत्यधिक बल अपने वास्तविक या कल्पित गुणों का विशेष बखान । इसके मूल में प्राय: हीनताग्रन्थि (inferiority complex) होती है । यह अपनी कामजोरियो को छिपाने तथा उन्हें अपनी और दूसरों की दृष्टि से बचाने का एक अचेतन प्रयास (unconscious device) है । " 12

उच्चता या महत्ता प्राप्ति प्रयास : (Striving for Superiority)

हीन और उच्च भावना के अलावा एड्लर ने उच्चता या महत्ता प्राप्ति प्रयास के बारे में भी सिद्धान्त बनाया है । यह सिद्धान्त महद्भाव से मिलती-जुलती है । उनका मानना था कि उच्चता या महत्ता की प्राप्ति का प्रयास हर व्यक्ति करता है । मनुष्य इतना अधिक लालची होता है कि सफलता मिलने पर भी वह

12: मनोविज्ञान का पारिभाषिक शब्दकोश – निर्मला शेरजंग – पृ॰ 195॰

सदैव यह चाहता है कि वह और ऊँचे स्तर की ओर बढ़े । एडलर के अनुसार इसका कारण व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य आक्रामकता (aggressiveness) होने के साथ-साथ उसकी इच्छा शक्ति की प्राप्ति (will to power) भी होती है ।

जीवन शैली : (Style of Life)

एड्लर के अनुसार बच्चा लगभग पाँच वर्ष का होते ही हीन भाव पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है । वह अपने जीवन लक्ष्य का निर्धारण कर, जो उसके जीवन चक्र में बाधा नहीं डाले उसी दिशा में कार्य करने लगता है । उनके अनुसार हर एक व्यक्ति की जीवन-शैली होती है परन्तु एक-दूसरे से अलग होती है जिसे व्यक्ति के निजी-जीवन के कार्य से पता चलता है ।

एड्लर के स्वप्न सम्बन्धी विचार :

एडलर फ्रायड् के स्वप्न सिद्धान्त को स्वीकार करते है परन्तु इनका मत भिन्न है । उनका मानना है कि स्वप्न के द्वारा न केवल अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति होती है बल्कि उसके साथ-साथ वर्तमान से सम्बन्धित संवेगों का भी ज्ञान होता है ।

2.4.3 युँग का विश्लेषणात्मक सिद्धान्त : (Jungs's Analytical Theory)

एड्लर की तरह ही युँग भी फ्रायड के साथ काम करते थे परन्तु बाद में विचारधाराओं में परिवर्तन आने के कारण अपना अलग मत प्रतिपादित किया जो विश्लेषणात्मक सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है ।

लिबिड़ो या काम शक्ति सिद्धान्त :

युंग ने फ्रायड़ और एड़लर दोनों के काम शक्ति या लिबिड़ो सम्बन्धी सिद्धान्त को आधार बनाकर कहा कि इसी शक्ति के कारण समस्थ मनुष्य किसी व्यवहार या सामाजिक सम्पर्क की ओर प्रेरित होता है ।

व्यक्तिगत अचेतन : (Personal Unconsciousness)

युंग ने अचेतन को अधिक महत्त्व दिया जो फ्रायड़ द्वारा प्रकट हुआ था उन्होंने अचेतन को दो भागों में बाँटा है - 1. व्यक्तिगत अचेतन 2. सामूहिक अचेतन (collective unconsciousness) । मनोविज्ञान कोश के अनुसार व्यक्तिगत अचेतन की व्याख्या इस प्रकार है --

" यह अचेतन मन का वह भाग है जिसमें व्यक्ति की सभी दमित इच्छाएँ संग्रहीत रहती है । जब कभी परिस्थिति और सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण जिन किन्ही प्रकृत इच्छाओं का दमन होता है अथवा चेतन मन (conscious mind) के निष्कासन होता है वे सब व्यक्तिगत अचेतन मन में संचित हो जाती है । जो अनुभूतियाँ अतीत की है और सुदूरवर्ती है उनका भी संकलन मन के इस भाग में रहता है आवश्यकता पड़ने पर अतीत की संचित स्मृतियाँ चेतन मन में प्रवेश करती है । युंग की व्यक्तिगत अचेतन मन की धारणा में फ्रायड़ का पूर्वचेतन (preconscious) और अचेतन मन (unconscious) निहित है । युंग की सामूहिक अचेतन मन (collective unconscious) की धारणा इसके अतिरिक्त है । " 13

---

13. मानविकी पारिभाषिक कोश - मनोविज्ञान खण्ड़, पद्मा अग्रवाल - पृ. 204.

सामूहिक अचेतन : (Collective Unconscious)

मनोविज्ञान कोश के अनुसार सामूहिक अचेतन की परिभाषा इस प्रकार है - " सामूहिक अचेतन मन सबसे निचला स्तर भाग होता है । इससे व्यक्तिगत नहीं जातीयता के गुणों का प्रतिनिधित्व होता है । यह पूर्वजों से प्राप्त गुण - विशेषताओं का कोश है और यह सामान्य विशेषताओं का कोश है जो हरेक व्यक्ति की बिना अपवाद सम्पत्ति होती है । ये जातीयता के गुण भाव - प्रतिभावों के रूप में होते है । अंग्रेजी में इन भाव - प्रतिभाओ को " आर्स्केटाइप्स " कहते है । वस्तुत: सामूहिक अचेतन मन की विषय- वस्तु " आरचेटाइप्स " है । भाव - प्रतिमाएँ सामान्य भाव, इच्छा, वृत्ति की प्रतीक होती है, इनका सम्बन्ध व्यक्तिगत भाव-इच्छा, वृत्ति से नहीं रहता । युंग के अनुसार सामूहिक अचेतन की भाव-प्रतिमाओं का ज्ञात मन में प्रवेश व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है । सामूहिक अचेतन की भाव-प्रतिभाओं का अभिव्यक्तीकरण स्वप्न कला, धार्मिक कृतियों और पौराणिक कथाओं में होता है । " 14

व्यक्तित्व प्रकार : (Personality types)

युंग ने व्यक्तित्व की व्याख्या मूलरूप (arche types) के आधार पर की है । सामान्य तौर पर उन्होंने दो वर्गों में मनुष्य को बाँटा है । 1• अन्तर्मुखी (introvert) 2• बहिर्मुखी (extrovert)

अन्तर्मुखी : (Introvert)

मनोविज्ञान कोश के अनुसार इस की व्याख्या इस प्रकार है - " अन्तर्मुखी का कारण व्यक्ति की लिबीड़ो (libido) का आन्तरिक जगत की ओर झुकाव होना है । अन्तर्मुखी व्यक्तियों (introvert) को बाहरी जगत विशेष आकृष्ट

14• मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश निर्मला शेरजंग - पृ• 70•

नहीं करता, सामाजिक मेल-जोल में उन्हें रुचि नहीं होती, अकेलापन उन्हें भाता है, वे स्वभाव से कल्पनाशील और चिन्तक होते है । "

बहिर्मुखी : (Extrovert)

अन्तर्मुखी व्यक्तित्व से यह बिलकुल विपरीत होता है । मनोविज्ञान कोश के अनुसार इस की व्याख्या इस प्रकार है -- " लिबोड़ो अर्थात् - जीवन शक्ति का बाहरी जगत की ओर झुकाव होता है । बहिर्मुखता व्यक्तियों की रुचियाँ मुख्यत: सामाजिक मेल-जोल तथा बहारी घटनाओं और पदार्थों की ओर रहती है । संसारी सफलता, सम्मान और ऊँचे पद की अभिलाषा इन्हें प्राय: कार्य-रत रखती है । " 15

2.4.4. अन्य मनोविश्लेषक :

फ्रायड़, एड्लर और युंग के अलावा और भी मनोविश्लेषक है जिनके सिद्धान्तों को भी काफी मात्रा में प्रयोग किया जाता है जैसे - कैरेन हॉर्मी ने फ्रायड़ के मातृ - ग्रन्थि (Oedipus complex) को माना और नारी मनोविज्ञान का आधार हीनता-भाव (feeling of inferiority) माना है । इसके अलावा बाल-मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इनके सिद्धान्त प्रसिद्ध है ।

सरिक फ्रॉम को नव्य-फ्रायडवादियों के अन्तर्गत गिना जाता है । आपने प्रेरणाओं (motives) से सम्बन्धित सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया । इसके अलावा उन्होंने मनोलैंगिक विकास (psychosexual development) से सम्बन्धित भी सिद्धान्त बनाये है ।

---

15. मनोविज्ञान का पारिभाषिक शब्दकोश - निर्मला शेरजंग - पृ. 55.

हैरी स्टैक सुलीवन (Harry Stack Sullivan) और आटों रैंक के सिद्धान्तों को भी अध्ययन के लिए प्रयोग किया जाता है ।

2.4.5 मनोरचनाएँ या रक्षा - युक्तियाँ : (Defence Mechanisms)

अन्तर्द्वन्द्व (conflict) और कुण्ठा (frustration) से बचने के लिए मनुष्य कई ऐसी मनोरचनाओं का प्रयोग करता है जिससे उसका सन्तुलन बिगाड़ने न पाये । प्रमुख रूप से प्रयोग में लायी जानेवाली मनोरचनाएँ कुछ इस प्रकार है -

दमन : (Repression)

इस शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम फ्रायड़ ने किया था । यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति में मानसिक कष्ट को उत्पन्न करती है । उस समय व्यक्ति ऐसे विचारों को दूर करने के लिए राह खोजता है । मनोवैज्ञानिक कोश के अनुसार - अनैतिक और असामाजिक इच्छाओं व वासनाओं, दु:खद और अप्रिय विचारों तथा स्मृतियों का अचेतन और अनैच्छिक (unconscious and involuntary) विरोध (फ्रायड़ : 1900) । दमन-प्रक्रिया अचेतन होती है, दमित वासनाएँ और स्मृतियाँ चेतना से अलग हो कर अचेतनता में चली जाती है और केवल रूप बदल कर (disguised form) व्यवहार में व्यक्त होती है, जैसे आकस्मिक भूले (slip of tongue) स्वप्न (dream) मनोग्रस्ति (obsession) आदि ।" [16]

प्रक्षेपण : (Projection)

मनोविज्ञान कोश के अनुसार इस की परिभाषा इस प्रकार है - " अपनी अव्यक्त, निषेधित या अनुचित अथवा अवांछनीय इच्छाओं तथा त्रुटियों को अपने-आप में न देख कर दूसरों में देखना जैसे अपनी असफलता के लिए दूसरों को या परिवेश की

---

16. मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश - निर्मला शरेजंग - पृ. 167.

व्यवस्था को दोषी ठहरना । यह प्रक्रिया अपने-आप को अपराध (guilty feeling) मानसिक द्वन्द्व (mental conflict) और हीन भावना (inferiority feeling) की पीड़ा से बचाने का एक अचेतन प्रयास है । " 17

तार्किकीकरण अथवा औचित्य - स्थापन (Rationalization)

व्यक्ति अपने दोषों, त्रुटियों और असफलताओं को छिपाने के लिए ऐसे तर्क रचता है कि असफलता का कारण किसी दूसरे व्यक्ति को ज्ञात तक नहीं होता है । जैसे उदाहरण के लिए एक व्यक्ति अच्छे कपड़े नहीं पहन पाता है तो वह कहता है कि " सादा जीवन उच्च विचार । "

प्रतिगमन : (Regression)

प्रतिगमन में व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों, समस्याओं मानसिक द्वन्द्व (mental conflict) और कुण्ठा (frustration) की वेदना से बचने के लिए रोने, मचलने, पैर पटकने, चीजों को ठोकर मारने आदि के द्वारा बचपन की प्रवृत्ति का परिचय देता है ।

उदात्तीकरण : (Sublimation)

फ्रायड़ (1900) के अनुसार उदात्तीकरण का मतलब कुछ इस प्रकार है जो मनोविज्ञान कोश में दिया गया है -" अनुचित और अवांछनीय प्रेरणाओं के रूपान्तरण की प्रक्रिया उनके प्रयत्क्ष रूप को बदल कर उन्हें समाज अनुमोदित कार्यों में प्रवृत्त करना जैसे कामवासना को संगीत और कला में । " 18

---

17. मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश-निर्मला शेरजंग -पृ. 152.
18. मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश - निर्मला शेरजंग - पृ. 193.

तादात्म्य : (Identification)

तादात्म्य के अनुसार व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को दूसरों के व्यक्तित्व - साँचे में ढालने का प्रयत्न करता है या दूसरों के व्यक्तिगत को अपना समझने लगता है । उदाहरण के लिए नाटक के पात्र के चरित्र का प्रभाव दर्शक पर पड़ता है ।

विस्थापन : (Displacement)

मनोवैज्ञानिक कोश के अनुसार - " दलित इच्छाओं (repressed desires) के विरूपण (distortion) अर्थात् रूपान्तरण की एक अचेतन प्रक्रिया, भावपूर्ण इच्छाओं या घटनाओं का सामान्य और सामान्य घटनाओं का भावपूर्ण दिखाई पड़ना। विस्थापन दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति का एक साधन है।"[19]

क्षतिपूर्ति : (Compensation)

क्षतिपूर्ति के माध्यम से व्यक्ति अपनी हीनता या अनुपयुक्ता (inferiority and inadequence) की भावना को दबाता है । उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति एक क्षेत्र में असफल होता है तो अपनी हीनता के निराकरण के लिए वह किसी अन्य क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है ।

इन सब मनोरचनाओं के अलावा कई और भी है जो समान्य मनुष्य के प्रतिदिन व्यवहार में देखी जा सकती है ।

2.4.6 लैंगिक विप्रयास या विकृतियाँ : (Sexual Perversion)

उपन्यासों में लैंगिक विप्रयास या विकृतियाँ (sexual perversion) से सम्बन्धित पात्र मिलते है । मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन में इनको भी प्रयोग किया जाता है सामान्य तौर पर साहित्य में पायें जाने वाली विकृतियाँ कुछ इस प्रकार है -

मनोविज्ञान का पारिभाषिक शब्दकोश - निर्मला शेरजंग, पृ. 4

समलैंगिकता : (Homosexuality)

मनोविज्ञान कोश के अनुसार इस का अर्थ है - " ... ने ... लिंग के व्यक्तियों में कामवासना का लगाव । समलिंग व्यक्तियों के प्रति आ... कामवासना का उद्दीपन और परितुष्टि । फ्रायड के अनुसार कामुकता के विकास में शैशव कामुकता (infantile sexuality) के उपरान्त समलिंग कामुकता की अवस्था 6-7 वर्ष की आयु से 11-12 वर्ष तक चलती है । प्रौढ़ावस्था में समलिंग कामुकता का होना अवरुद्ध भाव विकास (arrested emotional development) का लक्षण है । " 20

जड़ासक्त प्रेम : (Fetishism)

मनोविज्ञान कोश के अनुसार - " किसी वस्तु - विशेष (specific object) का व्यक्ति के लिए उसके प्रेम विषय (love object) का प्रतीक (symbol) बन जाना जैसे प्रेमी के बालों का रंग, रूप, कंघा, पेंसिल आदि । प्रतीक की उपस्थिति या चिन्तन व्यक्ति की कामोत्तेजना (sexual excitement) का निमित्त बन जाता है । " 21

परपीड़न रति : (Sadism)

फ्रायड के अनुसार कामुकता का एक विकृत रूप दूसरे को पीड़ा पहुँचाने की अकाट्य प्रेरणा और पीड़ा पहुँचाने - कटु शब्दों, उपेक्षा, ... और कठोर व्यवहार, शारीरिक चोट आदि से सुख-सन्तोष अथवा रतिसुख मिलना । विकार ग्रस्त व्यक्ति अपने कटु व्यवहार के लिए आन्तरिक रूप से विवश होता है इससे उसकी काम वासना की

20• मनोविज्ञान पारिभाषिक शब्द कोश - निर्मला शेरजंग - पृ• 71•

21• मनोविज्ञान पारिभाषिक शब्दकोश - निर्मला शेरजंग - पृ• 58•

परितुष्ट होती है । इस भावना का कुछ अंश तक होना स्वाभाविक है, जैसे प्रगाढ़ आलिंगन या चुम्बन, नख-दन्त-व्यवहार इत्यादि का सुख किन्तु पीड़ा पहुँचाने से रतिक्षन-सा सुख होना, पीड़ा पहुँचाने की भावना का अत्यधिक बढ़ जाना रतिमुख का सुख होना, पीड़ा पहुँचाने की भावना का अत्यधिक बढ़ जाना, रतिसुख की अनिवार्य अंग बन जाना कामुकता की विकृति के लक्षण है । " 22

स्वपीड़न रति : (Masochism)

मनोविज्ञान कोश के अनुसार इस शब्द का अर्थ इस प्रकार है – " दूसरे के हाथ से कष्ट पीड़ा सहने से कामसुख प्राप्त होना, इसका कुछ अंश तक व्यक्ति में होना स्वाभाविक है, जैसे नख-देत या प्रगाढ़ आलिंगन का सुख । किन्तु इसका अत्यधिक बढ़ जाना, पीड़ा से रतिक्षण (orgasm) का सुख प्राप्त होना विकारात्मक (pathological) है ।

अपने आप को कष्ट पहुँचाने से सुख-संतोष का प्राप्त होना भी स्वपीड़नरति है, जैसे आत्म-उपेक्षा (self-neglect) या उपवास से । परन्तु पीड़ा सहने से व्यक्ति को सन्तोष केवल उसी अवस्था में होता है जब अन्य व्यक्ति उसके कष्ट का कारण या दर्शक हो । " 23

शव कामुकता : (Necrophilia)

" यह एक विचित्र प्रकार की लैंगिक विकृति है जिसके मरे हुए को लैंगिक पात्र बनाकर लैंगिक सुख प्राप्त किया जाता है । इस प्रकार की कामुकता के उदाहरण बहुत कम ही प्राप्त होते है परन्तु कभी-कभी इस प्रकार की घटनाओं की खबर अक्सर प्राप्त होती है । जब पुरुष या स्त्री अपने प्रेम-पात्र से किसी कारणवश

22· मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश – निर्मला शेरजंग – पृ· 172·

23· मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश – निर्मला शेरजंग – पृ· 107·

लैंगिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते तो उनकी इच्छा दमित हो जाती है तथा मरे हुए जीवों के साथ समागम करने की इच्छा जाग्रत हो जाती है । " 24

ऊपर दी गयी विकृतियों के अलावा कई और भी है जैसे - प्रदर्शनवृत्ति (exhibitionism) शिशु कामुकता (infanto sexuality) स्पर्श आसक्ति (Frottousism) आदि ।

2.5·0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों मे प्रयुक्त मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त :

2.5·1 फ्रायड के सिद्धान्त :

आचार्य द्विवेदी के चारों उपन्यासों में फ्रायड़ के सिद्धान्त देखने को मिलते है । उनके सिद्धान्तों ने लगभग साहित्य की सभी विधाओं को प्रभावित किया । आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पाये जाने वाले कुछ फ्रायड़ सिद्धान्त इस प्रकार हैं --

व्यक्तित्व संरचना :

मन के दो पहले हैं - गत्यात्मक पहलू - इदम्, अहम् और परम्हम्, और स्थल रूपरेखीय पहलू - चेतन (conscious) अवचेतन और अचेतन unconscious) इन मानसिक स्तरों में अचेतन को अधिक महत्व दिया जाता है और जिसका प्रयोग हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों में उपयुक्त मात्रा में पाया जा सकता है । यह समान्य रूप से देखा जाता है कि मनुष्य अधिकांश बातों को अपने अचेतन स्तर पर रखता है जिसमें साधारणत: दमित इच्छाएँ भरी रहती है ।

इस सिद्धान्त के अलावा स्वप्न और दिवास्वप्न सिद्धान्त के प्रभाव को भी चारों उपन्यासों में देखा जाता है । इन दोनो सिद्धान्तों का सम्बन्ध अचेतन से जुड़ा रहता है ।

24· असामन्य मनोविज्ञान के मूल आधार - डा·लाभ सिंह - पृ· 256·

मनुष्य अन्तर्द्वन्द्व (conflict) और कुण्ठा (frustration) से बचने के प्रयास में मनोरचनाओं का उपयोग प्रतिदिन अपने जीवन के व्यवहार में करता है । आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों के आधार पर इनका भी प्रयोग देखा जा सकता है । जैसे (sublimation) उदात्तीकरण (चारों उपन्यासों में पाया जाता है) । इसी प्रकार क्षतिपूर्ति (compensation) में आत्मीकरण (idnetification) पुनर्नवा में, दमन (repression) चारों उपन्यासो में, साहचार्य (association) अनामदास का पोथा में, प्रयोपण (projection) और वास्तविकता के पलायन (reality evasion) बाणभट्ट की आत्मकथा में और शमन (suppression) बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा और चारूचन्द्रलेख में देखा जा सकता है । इनके अलावा फ्रायड के मनोलैंगिक विकास (psychosexual development) भी कुछ हद तक देखने को पुनर्नवा में मिलता है ।

2.5·2 एड्लर के सिद्धान्त :

एड्लर के द्वारा प्रतिपादित हीन भावना (inferiority complex) और उच्चतम ग्रन्थि (superiority complex) को लगभग चारों उपन्यासों में पाया जा सकता है । उच्चता या महत्ता की प्राप्ति प्रयास (striving for superiority) के भी लक्षण इनके उपन्यासों में देखने को मिलते हैं, मुख्य रूप से " अनामदास का पोथा " उपन्यास में ।

2.5·3 युंग के सिद्धान्त :

सामूहिक अचेतन सिद्धान्त का अनुप्रयोग भी चारों उपन्यासों में कुछ हद तक मिलता है ।

इन सब सिद्धान्तों के अलावा विशिष्ट रूप का अन्तर्द्वन्द्व - अभिगम - अभिगम (approach-approach conflict) को 'पुनर्नवा' और 'चारु - चन्द्रलेख' में पाया जाता है । अपराध भावना (guilt conscious) तो चारों उपन्यासों में किसी-न-किसी पात्र में देखने को मिलती है ।

मनोग्रस्ता - बाध्यता (obsessive-compulsive neurosis) जो कि एक प्रकार की मानसिक बीमारी है । इससे ग्रस्त " अनामदास का पोथा " का नायक रैक्व है । वातावरण का प्रभाव बच्चे पर जन्म से ही पड़ता है । यह बात ठीक है । परन्तु मूलप्रवृतियाँ जन्म के साथ ही आती है जो " रैक्व " (अनामदास का पोथा) में भी पाया जाता है ।

असामान्य व्यवहार के लक्षण (symptom of abnormal behaviour) मे विभ्रम (hallucination) और भ्रान्ति (illusion) को द्विवेदी जी के उपन्यासों के पात्रों में देखा जा सकता है ।

2.5.4 विकृतियाँ :

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों में विकृतियों को देखा जा सकता है । जैसे - 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' मे जड़ासक्त प्रेमी (Fetishim) के लक्षण दिखाई देते है । परपीड़न रति (sadism) को 'पुनर्नवा' में देखने को मिलता है । शवकामुकता (nechrophilia) को 'चारुचन्द्रलेख' में देखने को मिलता है । इनके अलावा भी कई और भी विकृतियाँ भी है जिनका विश्लेषण यथा स्थान किया गया है ।

2.6.0 निष्कर्ष :

विज्ञान के प्रभाव से संसार के हर क्षेत्र में परिवर्तन आने लगा । मनो - विज्ञान भी विज्ञान की एक शाखा है इसलिए इसने भी समाज को प्रभावित किया । यहाँ तक की साहित्य की हर विधा पर इसका प्रभाव पड़ा । फ्रायड़, एड्लर, युंग, कैरन होर्नी एरिक फ्राँम, हैरी स्टैक सुलीवन और आहो रैक आदि के सिद्वान्तों का काफी प्रभाव साहित्य पर दिखाई देता है ।

साहित्यकार दो प्रकार के होते है । एक तो वे है जो किसी विचार-धारा को ध्यान में रखते हुए अपनी रचनाएँ करते है । दूसरे तरह के रचनाकार वे है जो अपनी रचनाओं को किसी सिद्वान्त के बन्धन में रहते नहीं । फिर भी उनकी रचनाओं में प्रभाव दिखाई देता है । जैसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के उपन्यासों को मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों के अन्तर्गत न रखे जाने पर भी उसमें कई ऐसे पात्रों के व्यावहार और दृश्य मिल जाते है जिनका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है । यही प्रयास आगे प्रस्तुत है ।

तृतीय अध्याय

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

भूमिका :-

पिछले अध्याय में उन सिद्धान्तों का विस्तार से विवेचन किया गया है जिनका हिन्दी उपन्यासों में अनुप्रयोग किया गया है । इसके साथ ही उन मनोविश्लेषण सिद्धान्तों का भी जिक्र किया गया है जिनके आधार पर आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का अध्ययन किया जा सकता है ।

प्रस्तुत अध्याय में आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में प्राप्त मनोवैज्ञानिक लक्ष्यों का सन्दर्भ सहित विवेचन करने का प्रयास है ।

इस अध्ययन में कई उपशीर्षक है जो किसी विशेष सिद्धान्त से सम्बन्धित है । प्रत्येक उपशीर्षक के साथ एक तालिका है जिसमें उपन्यास का नाम, पात्र, और पृष्ठ संख्या है । ये किसी विशेष सन्दर्भ को सूचित करते है जिनका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है । प्रस्तुत उपशीर्षक कुछ इस प्रकार है --

1. आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में प्राप्त पराहम् या नैतिक विवेक से सम्बन्धित सन्दर्भ ।
2. आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों का अचेतन मन ।
3. आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों में अपराध भावना ।
4. उपन्यासों में पात्रों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न रक्षा-युक्तियाँ ।
5. स्वप्न सिद्धान्तों के आधार पर आचार्य द्विवेदी के उपन्यासो का विश्लेषण ।
6. उपन्यासों के पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व ।
7. उपन्यासों में प्राप्त मनोविकार से पीड़ित पात्र (मनोग्रस्ति - बाध्यता - विकार)
8. उपन्यासों में प्राप्त लैंगिक विपर्यास एवं सन्दर्भ ।
9. आचार्य द्विवेदी के उपन्यासा के पात्रों में विभ्रम की भावना ।
10. उपन्यासों के पात्रों में प्राप्त हीन, उच्च और उच्चता या महत्ता का प्रयास ।
11. उपन्यासों के कुछ सन्दर्भ और युग के सामूहिक अचेतन सिद्धान्त ।
12. आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में प्राप्त सन्दर्भ और परामनोविज्ञान से सम्बन्धित सन्दर्भ ।

3.3.1 आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में प्राप्त पराहम् या नैतिक विवेक से सम्बन्धित सन्दर्भ :-

व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष पराहम् के माध्यम से होता है । बचपन में इसका विकास अहम् के माध्यम से होता है । मनोविज्ञान कोश में इस के संबंध में इस प्रकार की व्याख्या है --

" अच्छे-बुरे, ऊँच - नीच, नैतिक - अनैतिक की विवेचना करनेवाली चेतन मानसिक प्रक्रिया । फ्रायड ने इसे सुपरइगो के नाम से मूर्तिमान किया है । पराहम् में केवल विवेचना शक्ति है, प्रेरणा शक्ति नहीं । इसके निर्णय की अवहेलना करना संभव है यद्यपि अवहेलना करने में मानसिक अशान्ति की संभावना है । सुपरईगो को प्रचलित भाषा में अन्त: करण कहते हैं । "[1]

पराहम् या नैतिक विवेक (फ्रायडीय सिद्धान्त)

उपन्यास	पात्र	पृष्ठ नं.
पुनर्नवा	मृणालमंजरी	37 - 38
अनामदास का पोथा	जाबाला	324
	"	327

पुनर्नवा :-

" पुनर्नवा " में मृणालमंजरी बचपन में आर्यक के साथ खेलती थी । जब आर्यक उसके पिताजी के पास वापस चला गया तो उसका मन कहीं नहीं लगता था । पहले तो अपने पिताजी (देवरात) से आर्यक के बारे में बार-बार पूछा करती थी परन्तु बाद में

1. मनोविज्ञान परिभाषिक शब्दकोश - निर्मला शेरजंग - पृ. 194.

पूछना ही छोड़ देती है । इस सन्दर्भ में वह सोचती है कि - " परन्तु समय के लम्बे व्यवधान के बाद एक ऐसी अवस्था भी आयी जब पिता से पूछने में उसे संकोच अनुभव होने लगा । मृणालमंजरी को पहली बार अनुभव हुआ कि आर्यक के बारे में पूछना ठीक नहीं । क्यों ऐसा हुआ यह प्रश्न उसके मन में उठा ही नहीं । ऐसा लगता था जैसे कोई हृदय के अज्ञात गहराई में बैठा कह रहा है कि सयानी लड़कियों को किसी लड़के के बारे में इतना पूछना उचित नहीं है । " [2]

मृणालमंजरी पहले आर्यक के बारे में पूछती थी । परन्तु बाद में भी उसके मन में पूछने की इच्छा बार-बार उठती थी किन्तु उसके इदम की इच्छा को नैतिक विवेक या पराध्य पूर्ति होने से रोक देता था क्योंकि पराहम समाज के नियमों को अधिक ध्यान देता है जहाँ की इदम नहीं । समाज के नियम के अनुसार किसी भी अविवाहित लड़की को किसी भी लड़के के बारे में पूछना उचित नहीं माना जाता है । इसलिए मृणालमंजरी की इच्छापूर्ति न होने में अपने-आप रूकावट आ जाती है ।

अनामदास का पोथा :-

" अनामदास का पोथा " में भी जाबाला की इच्छा नैतिक विवेक या पराहम् के कारण पूरा नहीं हो पाता है । जैसे रैक्व, शुभा के साथ विचार करना चाहते है परन्तु जाबाला कहती है -- " ऋषिकुमार, मैं तुम्हारे साथ बैठकर विचार कर सकती तो कितना अच्छा होता । पर तुम नहीं जानते कि ऐसा सम्भव नहीं है । " [3]

शुभा भी चाहती थी कि उसके (रैक्व) साथ बैठ कर वह विचार करें परन्तु उसें समाज का डर था । इतना ही नहीं राजकुमारी होती हुई भी वह चाह कर भी साधारण लोगों से नहीं मिल सकती थी । इसलिए ऐसा लगता है कि कुछ उसकी इच्छाओं की पूर्ति करने से रोक रहा है । दूसरे शब्दों में नैतिक विवेक या पराअहम् उसको नियमों को तोड़ने नहीं दे रहा है ।

---

2. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा - पृ. 37 - 38.
3. - वही - अनामदास का पोथा - पृ. 324.

प्रभा जब रैक्व को जंगल में ही छोड़कर वापस अपने राजमहल में आ जाती है तो भी उसी की याद करती रहती है । रैक्व के भोलेपन को मुख्यत: उसके पीठ को दिखा कर उसको बैठ जाने को कहने की बात तो बार-बार याद आती थी । वह बीती हुई बातों को लेकर इस प्रकार सोचती है -

" एक बार जाबाला के जी में आया था कि उसके पीठ पर सवार हो ही जाये । पर रुक गयी थी । दोष तो था ही । ऐसा भी कहीं होता है । उस जंगली मृगछौने को इसमें दोष नहीं दिखता तो क्या राजकुमारी जाबाला भी वैसी ही बन जाये ? नहीं, उस समय उसने अपने मन पर काबू पा लिया, यह अच्छा ही हुआ । " 4

रैक्व बहुत ही भोला था इसलिए उसको समाज के नियमों के बारे में कोई ज्ञान नहीं था । परन्तु जाबाला तो ऐसी नहीं थी । इसलिए उसकी इच्छा के होते हुऐं भी कि रैक्व के पीठ पर सवार हो जायें, नहीं हो पाती है क्योंकि उसके नैतिक विवेक या पराहम् ने उसको ऐसा करने से तुरन्त रोक दिया जिसके कारण जाबाला को अपनी इच्छा को जबरदस्ती दबाना पड़ा ।

पराहम् का कार्य ही कुछ ऐसा है कि इदम् की हर इच्छा को, विशेष कर जो समाज के नियमों के विरोध में हो, पूरा होने से रोक देता है । जहाँ बिना सोचे विचारे इदम इच्छा पैदा करता है वहाँ अहम उसे पूरा करने का मार्ग खोजता है किन्तु पराहम् सोच-विचार कर ही इच्छा को पूर्ति करने देता है । और कभी-कभी रोका भी जा सकता है ।

3·3·2 आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों का अचेतन मन :-

फ्रायड ने मन को तीन भागों में बाँटा है - चेतन, अवचेतन और अचेतन । इन तीनों में अचेतन को अधिक महत्व दिया है । इसके अनुसार मन का अधिकांश भाग अचेतन होता है और सबसे कम भाग चेतन का होता है । हर मनुष्य के शरीरिक और मान-

---

4· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ· 327·

सिक मन होता है । अचेतन में छिपी हुई बातें अवचेतन से होती हुई चेतन स्तर पर आती है । अगर अचेतन में छिपी हुई इच्छाएँ परिष्कृत होकर चेतन स्तर पर आ नहीं जाती है तो व्यक्ति में ग्रन्थि का उद्भव होता है । साधारणत: व्यक्ति अपने मन में छिपी हुई बातों को बाहर आने से रोक कर अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है । इस प्रकार करने से व्यक्ति के मन में जो इच्छाएँ छिपी हुई है उनका बिल्कुल ज्ञान नहीं होता है]।

[आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में भी पात्रों के व्यवहार और मन (अचेतन) में छिपी बात में अन्तर देखने को मिलता है ।] जिनको निम्न तालिका में रखा गया है जिसका विश्लेषण बाद में किया गया है।

अचेतन से सम्बन्धित सन्दर्भ

उपन्यास	पात्र	पृष्ठ नं.
बाणभट्ट की आत्मकथा	बाणभट्ट	72
	"	78
	"	79
	भट्टिनी	142
	बाणभट्ट	173
	निपुणिका	250
चारु चन्द्रलेखा	राजा सातवाहन	529-530
पुनर्नवा	मंजुला	24
	देवरात	23
	"	25
	"	28
	"	29-30

	देवरात	34
	मंजुला	60
	चन्द्रा	86
अनामदास का पोथा	रैक्व	323
	जाबाला	327
	"	331
	"	332
	रैक्व	336
	"	342
	माता ऋतम्भारा	343
	जाबाला	389
	"	391
	आश्वाय	430
	रैक्व	462

बाणभट्ट की आत्मकथा :-

इस उपन्यास का नायक बाणभट्ट निपुणिका को भीट्टनी के साथ नगर के बाहर एक मन्दिर में ठहराते है । वह स्थान रहने के लिए उचित न होने के कारण दूसरे दिन बदलने का निश्चय करते हैं । निपुणिका और भीट्टनी को भेजने के बाद बाणभट्ट इस तरह अनुभव करता है - " जाने से पहले मैं एक बार फिर प्रांगण गृह में गया मानों कोई भूली हुई वस्तु खोजनी थी । मोह भी कैसी विचित्र वस्तु है । इस टूटे प्रांगणगृह के प्रति मेरा आकर्षण इस समय कुछ बढ़ सा गया था । सूना तो वह सदा से था, लेकिन भीट्टनी के निकल जाने के बाद वह विकट सूना हो गया था । उसकी दीवारें मानों

बार-बार चिल्लाकर कह रही थी कि आज हम यथार्थ में सूनी है । कुछ देर तक मैं अकारण वहाँ ठिठका खड़ा रहा । भट्टिनी की एक दिन की पूजावेदी अब भी गीली थी । उस पर के महवराह चले गये थे, पर अपनी उद्धार-महिमा का चिन्ह उस पर छोड़ गये थे, थोड़ी देर तक मैं उस वेदी की ओर मुग्धभाव से देखता रहा और फिर एक बार उन तान्त्रिक चिन्नों की ओर भी स्थिर नयनों से देखा । " 5

बाणभट्ट, भट्टी की ओर आकर्षित था । इस बात को वह अक्सर अपने अचेतन स्वर में दबाए रखता था । शायद यही कारण था जिसके फलस्वरूप उदात्त भावना से उसकी सेवा करता है । परन्तु यह बहुत ही विचित्र-सा लगता है कि मन में एक भावना छिपी थी और ठीक उसके विपरीत व्यवहार बाणभट्ट करता है । उक्त पंक्तियों से यह भी लगता है कि बाणभट्ट, भट्टनी का साथ न होने की कमी महसूस कर रहा है । और जब बाबा उससे भट्टिनी के बारे में पूछते है तो तुरन्त कहता है - " उस कन्या का सेवक होना गौरव का विषय है आर्य, मैं उसके मंगल के लिए प्राण तक दे सकता हूँ । " 6 इसके आलावा एक और उदाहरण भी मिलता है जिसमें बाबा सीधे ही बाणभट्ट से पूछते है कि वह भट्टनी को क्या समझता है ? इस पर उसके मुँह से उत्तर नहीं आ पाता बल्कि - मैं .... मैं ..... मैं । " 7 करने लगता है । जब किसी व्यक्ति के अचेतन में छिपी हुई बातों पर अगर कोई प्रहार करता है तो साधारणत: उसके मुँह से शब्द निकलना ही मुश्किल हो जाता है । ऐसा लगता है कि उस पर किसी ने वार किया हो क्योंकि वह सच्ची बात को तो कह नहीं सकता है । इसलिए अचेतन की बातों को छिपाते हुए उसके ठीक विपरीत उत्तर देने की कोशिश करता है । जैसे बाणभट्ट भट्टनी की ओर आकर्षित होने पर भी इस बात को वह छुपायें रखता है ।

बाणभट्ट के अचेतन पर एक और वार धावक करता है । जैसे वह कहता है - " चाँद देखते हो क्या आर्य ? किसी की याद आ गयी है क्या ? " उसके परिहास से

---

5. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1 बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. 72;
6. - वहीं - पृ. 78.
7. - वही - पृ. 79.

मै चौक पड़ा, क्योंकि मुझे सचमुच ही भट्टिनी की याद आ गयी थी । "[8] किसी व्यक्ति के प्रति लगाव या अ-लगाव होने पर ही उस व्यक्ति की याद किया जाता है । जैसे यहाँ भट्टिनी के प्रति लगाव बाणभट्ट को था जिसके कारण वह उसकी याद किया करता था ।

बाणभट्ट की उदात्त भावना को देख कर वह कहती है कि - "यह क्या बालकों की भाँति उत्तरल भाव है भट्ट ! मैं देवि नहीं हूँ । हाड़ माँस की नारी हूँ । मैं विघ्न स्वरूप हूँ, परन्तु मैं जानती हूँ । कि मेरा विघ्नरूप होना ही विश्व का परित्राण है । तुम्हीं ने मुझे यह ज्ञान दिया है भट्ट, और तुम्ही उसे भुलवाने को प्रेरित कर रहे हो ? मै हूँ तुम्हारी भट्टिनी " अचानक वे रूक गयी । कुछ कहती-कहती भी न कह सकी । "[9]

उक्त पंक्तियों से ऐसा लगता है कि भट्टिनी अपने दिल की बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न भट्ट के सामने कर रही है । वह यह भी साफ कहती है कि वह अन्य समान्य नारी की भाँति ही है । निपुणिका भी ठीक इसी प्रकार बाणभट्ट से उपन्यास की शुरूआत में कहती है । भट्टिनी के न चाहने पर भी अचेतन में छिपी हुई इच्छा किसी-न-किसी तरह से जीभ से फिसल कर बाहर आ ही गयी । अचेतन में दमित कई तरीखों से बाहर आती है जैसे - स्वप्न, जीभ से फिसली बातें, लिखते समय गलत शब्दों का प्रयोग करना आदि । जैसे यहाँ भट्टिनी के अचेतन की बात अचानक मुहँ से निकल गई ।

निपुणिका, बाणभट्ट की ओर आकर्षित थीं । इसका ज्ञात उपन्यास की शुरू आत से ही होता है । वह कई बार उससे कहती भी है । परन्तु बाणभट्ट उसकी बातों की परवाह नहीं करता है । जिसके कारण निपुणिका अपनी भावना में परिवर्तन लाती है । निपुणिका के बाहरी व्यवहार में तो परिवर्तन आ जाता है लेकिन अचेतन में दमित इच्छा तो ठीक उसी तरह थी जिस प्रकार पहले थी । वह ज्ञात तब होता है

---

8. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्टकी आत्मकथा पृ.
9. - वही - पृ. 142.

जब वह नाटक खेलते-खेलते उसके मन की बात उभर कर बाहर आ जाती है । बाणभट्ट के शब्दों में - "जो होना था वह होकर ही रहा । अभिनय बहुत सुन्दर हुआ । वासवदत्ता की भूमिका में निपुणिका ने तो उन्माद बरसा दिया । उसके हर्ष, शोक और प्रेम के अभिनय के वास्तविकता थी । मैं हतभाग्य बराबार उसे अभिनय से कहीं अधिक था, भिन्न था वह वास्तव में निपुणिका ने अपने को ही खोलकर रख दिया । अन्तिम दृश्य में जब वह रत्नावली के हाथ मेरे हाथ में देने लगी तो सचमुच विचलित हो गयी । वह सिर से पैर तक सिहर गयी । उसके शरीर की एक-एक शिरा शिथिल हो गयी । भरतवाक्य समाप्त होते-होते वह धरती पर लोट गयी ।" 10

उक्त पंक्तियों से ऐसा लगता है कि निपुणिका बाहरी व्यवहार में भले ही बदल गयी हो परन्तु उसके अचेतन स्तर पर जो दमित इच्छाएँ थी वहीं वास्तविक में सच्ची थी । वे अवसर मिलते ही उभर कर बाहर आ गई ।

अंत में कहा जा सकता है कि बाणभट्ट, भट्टिनी और निपुणिका तीनों के अचेतन स्तर में दमित इच्छाओं को सुरक्षित पाये जा सकता है । परन्तु समय मिलते ही यथार्थ किसी-न-किसी रूप में बाहर आ ही जाता हैं ।

चारु चन्द्रलेखा :-

राजा सातवाहन, चन्द्रलेखा और मैना की प्रेम कथाएँ एक त्रिकोण बनती है । परन्तु वे एक दूसरे से मिलती नहीं है । राजा सातवाहन दोनों - मैना और चन्द्रलेखा के बारे में सोचता रहता है । जब वह बोधा और प्रधान के साथ मैना के सन्दर्भ में बात - चीत हैं तो सातवाहन कुछ इस प्रकार सोचता है - "बोधा प्रधान के साथ दिन-भर चलता रहा हूँ, हजार बार मैना मेरी चितभूमि में आयी है, हजार बार मैंने उसके बारे में पूछना चाहा है, पर वाणी रूद्ध हो गयी है । सून रहा हूँ, मैना कुछ कर रही है ?

---

10. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, चारु चन्द्रलेखा पृ. 529-530.

कहाँ है वह ? बोधा प्रधान चुप है मैं और सुनना चाहता हूँ । " [11] राजा सातवाहन के अचेतन स्तर में होते हुए मैना के बारे में सोचता रहता है । परन्तु उसमें पूछने की हिम्मत नहीं है । यह सोचता है कि वे लोग क्या सोचेंगे । परन्तु उससे न रहा जाने के कारण अंत में मैना के बारे में पूछ ही लेता है । ऐसा लगता है कि उसके अचेतन में छिपी बात बाहर आने का रास्ता खोजती है और आ भी जाती है ।

पुनर्नवा :-

मंजुला बहुत सुन्दर थी । वह गाने और नाचने में भी निपुण थी । वह मन-ही-मन देवरात के प्रति आकर्षित होती है । इस बात का पता किसी को होने नहीं देती । असल में अचेतन में छिपी हुई बात को नृत्य के माध्यम से इस प्रकार बाहर निकालती है - " महाराज ने उल्लासपूर्वक साधुवाद किया और मंजुला रंगभूमि में उतरी । उस दिन वह सचमुच " भावानुप्रवेश " की मुद्रा में थीं । बड़ी ही करूण मधुर वाणी में उसने अपनी रचना पढ़ी । लेकिन कविता का पाठ आरम्भ करने के साथ ही वह भाव विह्वल मुद्रा में दिखायी पड़ी । कसा हुआ धम्मिल पारा (जुडा) न जाने कब बिखरकर पीठ पर फैल गया । उसने यह कविता लिखी थी यह तो उसके अन्तर्यामी ही जानते होंगे परन्तु उसके पढ़ने में अजीब मादकता थी । ऐसा जान पड़ता था कि उसने हृदय का समूचा रस उंडेलकर उसके एक-एक अक्षर को भिगोया था । यथास्थान " काकू " का उचित सन्निवेश था और छन्द की लहरी भाव के साथ विचित्र भंगिमा में हिल्लोलित हो उठी थी । उस दिन वह वास्तविक " भावानुप्रवेश " की आवस्था में थी । " [12]

उक्त पंक्तियों के आधार कहा जा सकता है कि अचेतन में छिपी हुई बातें उचित समय पर किसी-न-किसी रूप में बाहर आ ही जाता है । जैसे मंजुला में भला कितना भी अहम हो परन्तु सत्य छिपाने पर भी छिपा नहीं रह सकता है ।

---

11. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग-1, चारू चन्द्रलेखा पृ. 529-530.

12. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग 2, पुनर्नवा पृ. 24.

जब तक मंजुला जिंदा थी उसने कभी अपने दिल की व्यथा व्यक्त होने नहीं दी परन्तु मरने से पहले वह अपनी बेटी के साथ एक पत्र छोड़ जाती है जिसमें वह जो कुछ देवरात के प्रति भावना मन में छिपायी रखी थी उसकी अभिव्यक्ति मिलती है -
" कैसे बताऊँ स्वामिन, मंजुला का जीवन कितना तृषित है । तुमने कहा था कि तेरा देवता तेरे भीतर है मानती हूँ, अवश्य होगा । पर तुम जो नहीं समझ सकोगे, वह यह है कि स्त्री का देवता माध्यम खोजता है, ठोस ग्रहणीय माध्यम ! साध्वी रम - णियाँ पति का माध्यम पा लेती है । वे धन्य है, स्पृहणीय है । पर हाय, गणिका का माध्यम नहीं होता । वह जुगुप्सित भोग के विकट दावाबल में झुलसती रहती है। नारी का जीवन किसी प्रकार पा सकती है । मैं कहाँ से यह साधना प्राप्त करती है ? सो मैंने चोरी की है । मैंने तुम्हारी भाव-मूर्ति का माध्यम बनाने की धृष्टता की है । इसे अन्यथा न मानना । " 13

इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि मंजुला किस प्रकार के सम्बन्ध की देवरात से आशा रखती थी । परन्तु वह कभी पूरा नहीं हो पाया ।

देवरात शान्ति की खोज में भटकते रहते हैं । हलद्वीप में मंजुला को देखते है जिसका रूप और गुण उनकी पत्नी शर्मिष्ठा से मिलती-जुलती थी तो वही रुक जाते है । परन्तु वे कभी भी उसके प्रति अपनी भावना व्यक्त नहीं करते है । अंत तक अपने अचेतन में दबाये रखते है । पर एक विचित्र गुण देखा जाता है कि वे जब कभी अकेले में रहते है तो बार-बार वहीं दोहा छन्द गुनगुनाते थे जो मंजुला ने मार्मिक स्वर से सुनाया था । जैसे -

" देवरात यथापूर्व निर्विकार और निर्लिप्त बने रहें । केवल एक परिवर्तन हुआ जिसे देवरात के अन्तर्यामी के सिवा और कोई नहीं देख सका । जब कभी देवरात एकान्त में होतें, वे उदास स्वर में गुनगुना उठते :-

---

13. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 13.

दुल्लह जण अणुराउ गुरू लज्जा परब्बसु प्राण ।
सदि मणु विसम सिणेह वसु मरणुं सरणु णहु आणु ।। "[14]

देवरात के अचेतन में दमित बात कई बार बाहर निकलती हुई दिखाई देती है जो कुछ वह बोलते थे उसके दो अर्थ भी निकलते थे । जैसे " राजा ने मंजुला से कहा, " हाँ सुन्दरी, कुछ प्रत्यय मनोहर सुनाओं । " प्रत्यग्र - मनोहर, अर्थात् जो अपनी ताजगी से ही मन हर लेता हो । मंजुला ने एक बार फिर देवरात की ओर ईषत् कटाक्ष निक्षेप किया । भाव यह था कि शुरू करूँ, अनुमति है ? " देवरात ने हँसते हुए कहा " अवश्य, सुनाओं देवि, मगर सौन्दर्य तो वहीं है जो बासी नहीं होता । " मंजुला ने जीभ काट ली क्या देवरात को उसकी आबोधना बुरी लग गयी है ? राजा की ओर देखते हुए, किन्तु वस्तुत: देवरात को लक्ष्य करके उसने कहा, बासी को भी ताजा बना सकती हूँ, महाराज । "[15]

इसी सन्दर्भ से सम्बधित एक और उदाहरण - " देवरात हँसे " तुम्हारी उस कविता से मुझे चोट लगी । किसने कहा, देवि ? " फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बोलते गये, " बासी घाव हरा हो गया था, देवि ! उसके बारे में न पूछ बैठना पर उस दिन तुम्हारे भीतर सुप्त देवता का सन्धान मुझे मिला था, सुप्त देवता, जो जाग उठा था । "[16]

उक्त दोनो उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है बासी घाव का हरा हो जाने का अर्थ यह था कि देवरात मंजुला में शर्मिष्ठा को पाते थे । वे उसकी अनु - पस्थिति को महसूस करते थे । इस कारण शर्मिष्ठा को भूल जाने का प्रयास करते थे परन्तु मंजुला के द्वारा फिर से भूली हुई बातें ताजी हो गयी । इसका कारण यह था कि उनके अचेतन में जो बात छिपी थी उसको तो वह चाह कर भी निकला नहीं सकते थे ।

---

14. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 25.
15. - वही - पृ. 23.
16. - वही - पृ. 28.

देवरात, मंजुला में अपनी पत्नी के रूप को देखने के कारण उसे भी पवित्र मानते थे । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अचेतन में मंजुला को देखते ही उसके स्थान में उनकी पत्नी दिखती है जो रूप और गुण में पवित्र थी । जैसे - देवरात ने बीच में ही टोका, " सुनो देवी, तुम इतनी व्यथित क्यों हो रही हो ? अपने पर तुम्हारी यह अनास्था उचित नहीं है । तुम बार-बार अपने को पापिनी और अपराधिनी कहती हो तो मेरा अन्तरतर काँप उठता है । यहाँ शुद्ध सुवर्ण कहीं नहीं है । सब जगह खाद मिला हुआ है । सब कुछ शुद्ध सवर्ण और खाद से बना हुआ हेमालंकार है । किसने यह आभूषण पहन रखा है ? उसी को खोजो । पाप और पुण्य जब किसी को समर्पित हो जाते है तो समान से धन्य हो जाते है । मन में खोट न आने दो देवि, तुम नारायण की स्मित रेखा के समान पवित्र हो, आह्लादक हो, आनन्ददायिनी हो । देवि जिस दिन देवरात ने तुम्हें देखा था, उस दिन उसे लगा था कि वह कुछ अपूर्ण देख रहा है, कुछ नवीन अनुभव कर रहा है । तुम विश्वास मानो देवि, तुम्हारे दर्शनमात्र से देवरात का सम्पूर्ण अस्तित्व उमड़ आता है । निस्सन्देह तुम्हारे भीतर कोई महा आकर्षक देवता बसता है । " 17

अचेतन में कई तरह की दमित इच्छाएँ होती है । बिछुड़े हुए व्यक्ति से मिलना कठिन होने के कारण अक्सर व्यक्ति उसकी याद कर मनस्तृप्ति कर लेता है । और उस व्यक्ति से किसी दूसरे व्यक्ति का रूप या व्यवहार मिलता-जुलता हो तो तुरन्त उस व्यक्ति की याद आ जाती है जो अचेतन स्तर में दमित है । जैसे देवरात हमेशा शार्मिष्ठा के बारे में सोचता रहता था परन्तु मंजुला उससे मिलती-जुलती होने के कारण उसको भी उतना ही सम्मान देता है जितना शर्मिष्ठा को उसने दिया था । अर्थात् व्यक्ति के बदलने पर भी विचार में परिवर्तन नहीं आता ।

चन्द्रा में अतृप्त काम - वासना को देखा जा सकता है जो उपन्यास में कई रूपों में व्यक्त हुआ है । जैसे उसका आर्यक के साथ व्यावहार, जबरदस्ती आर्यक के पीछे पड़ जाना और वीरक से उसकी बातचीत । जो कुछ वह कार्य करती है या बोलती है,

---

17. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 29 - 30.

उसके द्वारा अचेतन में दबी हुई इच्छाओं का पता होता है । उदाहरण के लिए वीरक से कहती है कि " चन्द्रा ने हँसते हुए कहा, क्या बदनामी हुई मेरा ? यही न कि तुम चन्द्रा के साथ अनुचित सम्बन्ध रखता है । इसमें पुरूष की क्या बदनामी है ? तेरे - जैसा जवान पुरूष मैं होती तो न जाने कितनी लड़कियों से प्रेम करती । तुम तो कायरों की तरह बात कर रहा है । " [18] इन वाक्यों में वह यह स्पष्ट रूप से कह देना चाहती है कि पुरूष को डरपोक नहीं होना चाहिए । साथ ही अपनी कामुक इच्छा को भी प्रकाश में ला रही है । इस उदाहरणों के अलावा भी कई और भी सन्दर्भ मिल जाते है जिससे चन्द्रा की अचेतन मन की इच्छा को साफ पता लगता है ।

अनामदास का पोथा :-

रैक्व पाप और पुण्य का अर्थ अच्छी तरह से जानता था जिसके कारण जब शुभा " पाप " शब्द का प्रयोग करती है तो वह सोचता है कि उसने कोई बहुत बड़ी गलती कर दिया है और उसमें अपराध भावना का उदय हो जाता है । जैसे - " कृषिकुमार सोच में पड़ गये - मैं जानता कैसे नहीं । यह धर्म - संगत प्रस्ताव है । इसमें अनुचित क्या हो सकता है । नहीं शुभे इससे कुछ भी अनुचित नहीं है । आ जाओ मेरी पीठ पर । अनुचित क्या है भला ! और अपनी पीठ राजकुमारी के समाने कर दी । उन्हें आशा थी कि वह उनकी पीठ पर आ जायेगी । पीठ में एक अजीब-सी सनसनाहट हो रही थी । वह शान्त नहीं हुई । राजकुमारी दो पग पीछे खिसक गयी । बोली, " तुम बहुत भोले हो कृषिकुमार, उठो, मेरी और देखो । " [19]

जब से पीठ पर एक विचित्र सन-सनाहट शुरू हुआ था वह तुरन्त अपराध - भावना को भी साथ जोड़ लेता है । इसीलिए जब भी उसको शुभा की याद आती है तो तुरन्त उसका हाथ पीठ पर चला जाता । इतना ही नहीं वह कई बार

---

18. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 86.
19. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा पृ. 323.

उसके अपराध को दूसरों के सामने भी व्यकृत करता था । उदाहरण के लिए आचार्य से वह कहता है कि - " मैंने कुतूहल के साथ कहा, " इतना तो मै भी बता सकता था । तापसकुमार ठठाकर हँसे और बोले, " इतना मैं भी जानता था । लेकिन बस, इतना ही । उस रात को ऐसा हुआ कि शुभा को चोट आ गयी थी । मैंने कहा कि वे मेरी पीठ पर बैठ जायें । यह तो धर्म ही था लेकिन शुभा ने कहा कि नहीं, यह ठीक नहीं होगा । ऐसा किसी युवक का सोचना भी पाप हैं । मै नहीं माना, मैंने अपनी पीठ उनके सामने कर दी । वे हट गयी । मेरी पीठ में सनसनाहट अनुभव हुई । थोड़ी देर वैसे ही बैठा रहा । पर शुभा हट गयीं । उन्होंने कहा कि यह अनुचित है, पाप है । सचमुच पाप था । मेरी पीठ की सनसनाहट वैसी ही बनी रह गयी । पाप का फल तो मिलता ही है । " 20

वास्तव में अपराध की भावना तो वह महसूस करता ही है इसके साथ-साथ उसके अचेतन में शुभा की ओर आकर्षण भी पैदा होती है जिसका ज्ञान उसको नहीं था । अचेतन में छिपी हुई इच्छाएँ मुख्य रूप से स्वप्न आदि का मार्ग तो लेती ही है । इसके साथ ही व्यक्ति में कुछ विशेष तरह की क्रियाएँ भी देखी जा सकती है जिसका सम्बन्ध अचेतन मन से जरूर होता है । जैसे रैक्व के पीठ की खुजली का सम्बन्ध शुभा से है ।

जटिल मुनि, रैक्व से बाते करते-करते उसके अचेतन में स्थित बातों को अच्छी तरह समझ लेता है और उसको यह समझाता है कि वह जो पाप समझता है वह वास्तव में पाप नहीं है । और उसे पूर्ण रूप से उसके विभिन्न मानसिक संवेगों के बारे में समझाता है । जैसे रैक्व से कहते है कि - " देखों आयुष्मान शुभा से तुम्हें प्रेम है । मैंने शुभा को तो नहीं देखा परन्तु तुम्हारी बातों से मालूम होता है कि शुभा भी तुमसे प्रेम रखती है । मेरी माताजी ने बताया था कि किसी तरूणी की ओर आकृष्ट होना " काम " है । परन्तु उसके लिए आपने-आपको निखट कर देने कि भावना " प्रेम " कही जाती है । माताजी ने कहा था कि तुम किसी काम भावना से किसी तरूणी की ओर आकृष्ट न होना । परन्तु यदि कभी तेरे चित में प्रेम का उद्वेग हो तो उसे पाप न समझना । काम आध्यात्मिक विकास का बाधक है, जब कि प्रेम उसका उन्नायक । " 21

20· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ· 336·

21· - वही - पृ· 462·

रैक्व के अचेतन में किस प्रकार शुभा को पाने की आशा है उसी प्रकार जाबाला भी रैक्व को पाने की आशा करती है । अर्थात् दोनो एक दूसरे की ओर आकर्षित होते है । सामान्य रूप से देखा जाये तो मनुष्य उसी व्यक्ति या चीज के बारे में याद करता है जिससे उसका किसी भी तरह का सम्बन्ध हो । जैसे रैक्व की ओर जाबाला का लगाव था जो उसके ज्ञान के बिना ही अचेतन में प्रस्तुत था जिस कारण वह अक्सर उसके बारे में सोचती रहती है । इससे सम्बन्धित कई और उदाहरण उपन्यास में देखने को मिलती है । जैसे - " दिव्य लोक के प्राणी के बिछुडने पर क्या मानसिक अवस्था उसकी हुई होगी ? कचट जाती नहीं, हृदय मसोस उठता है । हाय, बिचारा बड़ा ही भोला है । कहता है, सब कुछ वायु से ही निकला है, उसी में विलीन हो जायेगा । हृदय में न जाने कैसी उथल-पुथल महसूस करता का पता ही नहीं है । " 22

शुभा अपनी अचेतन में दमित इच्छाओं को पूर्ती के लिए चेतन स्तर पर ला नहीं पाती है । इसलिए वह अपने मन में ही अपनी इच्छाओं को दमित कर उनसे मानसिक शक्ति को खो देती है । उदाहरण के लिए - " जाबाला कह नहीं पा रही है मगर उसके हृदय में भारी उत्थल-पुथल है । उस ऋषिकुमार ने अपना नाम रैक्व ही तो बताया था । वह जीवित तो अवश्य है पर कहाँ है ? हाय, उसने उसे दूर जाकर छिप जाने को कह दिया और स्वंय चली आयी । आकर क्या उसने उसे खोजा नहीं होगा । क्या वह विक्षिप्त की भाँति " शुभे-शुभे " कहकर चिल्लाया नहीं होगा ? क्या बीती होगी उस भोले ताण्सकुमार पर । वह अपनी व्यथा किसी से कह नहीं रही थी । भीतर - ही - भीतर वह, अपने ताप से आप ही जलने लगी । " 23

उसके अचेतन में छिपी इच्छा कई रूपों से निकलती हुई दिखाई देती है जिसमें जीभ से फिसली बात भी एक है । साधारण रूप से देखा जा सकता है कि जो कुछ मन में दबी हुई इच्छा रहती है उसके बारे में ही व्यक्ति न चाहते हुये भी बोल देता है । जैसे - " राजा ने आचार्य से कहा कि वे स्वंय जाकर पता लगाये कि यही व्यक्ति रैक्व है या नहीं । जाबाला को जब यह समाचार मिला तो उससे नहीं रहा गया - आचार्य

---

22. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ. 327.
23. - वही - पृ. 331.

को बुलाकर उसने जोर देकर कहा कि "तात, निस्सन्देह यही व्यक्ति रैक्व है ।" आचार्य ने जब पूछा कि "तू कैसे कह सकती है कि तापस रैक्व है ?" तो उसने बिना किसी झिझक के कहा, "मै जानती हूँ ।"[24]

जीभ से फिसली हुयी बात से ही सम्बन्धित एक और उदाहरण मिलता है - "डाँटना मत माँ, उस बिचारे का क्या दोष है ? उसने लोक व्यवहार जाना नहीं था । समझा देना, समझदार अवश्य है, मैंने उसे जो कुछ समझाया था, वह समझ गया था । डाँटना मत, भोला है न ?"[25]

जाबाला (शुभा) अचेतन में अपनी इच्छा को दबाये रखना अपने आपसे गलती समझती है और कहती है - "दोष तो मेरा ही है, मैं उसकी चिन्ता में खो जाऊँ तो वह क्यों दोषी होगा ? थोड़ी देर तक उसके मनोभावों का उतार-चढ़ाव ध्यान से देखती हुई भगवती ऋतुम्भरा शान्त बैठी रहीं ।"[26]

जब रैक्व की भेंट माता ऋतुम्भारा से होती है तो वह उन्हें भी शुभा के बारे बताता है । माता उसकी पूरी बात सुन कर कहती है कि - "मेरे भोले लाल, शुभा के कारण ने भी ठीक कहा था, तुने भी ठीक कहा था । पर यह जो सनसनाहट है वह पाप के कारण नहीं है, मन के कोने में छिपी हुई किसी दुर्लभ अभिलाष भावना की देन है । इसे तो शुभा ही ठीक कर सकती है । पर तू यह बात कभी न सोच कि तूने पाप किया और उसका दण्ड भोगरहा है । नहीं, इसमें पाप की कोई बात नहीं है । तू समझ नहीं रहा है कि तेरे मन में कहीं बहुत गहराई में शुभा को पाने की अभिलाषा है । वही सनसनाहट के रूप में अभिभूत हो रही है । यह ठीक हो जायेगा ।"[27]

---

24. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ. 332.
25. - वही - पृ. 389.
26. - वही - पृ. 391.
27. - वही - पृ. 343.

माता ने रैक्व के अचेतन मन में छिपी इच्छा को जान लिया था जिसका पाता उसे खुद नहीं था । इसलिए वह अच्छी तरह से उसको समझाती है कि जिसे वह पाप के रूप में समझ रहा है वह असल में अतृप्त इच्छा है जो समय पर जाग उठती है ।

जटिल मु और माता ऋतम्भरा के आलावा आश्वलायन भी रैक्व को उसके पीठ की सनसनाहट के बारे में समझाते है - " बिल्कुल ठीक । प्रेमपखरा युवतियों और युवकों को यहीं कन्दर्प देवता - चाहो तो गन्धर्व भी कह सकते हो - फूलों के बाण से बेधा करता है । तुम्हें भी बेधा है और तुम्हारी शुभा को भी यही गन्धर्व पीड़ा है । चाहों तो कपिश गान्धर्वों की भाँति कन्दर्प पीड़ा भी कह सकते हो । " मुझे किसी ने फूलों के बाण से नहीं बेधा । " बेधा है । वह तुम्हारी हाथ पीठ के उस आघात को सहलाता है । बिचारी शुभा की उसने छाती में बेधा होगा । तभी उसका रक्त क्षीण हो रहा है । समझ रहे हो ? " [28]

रैक्व को समझाने की कोशिश कर रहा है कि इस सनसनाहट का कारण शुभा की ओर आकर्षित होना है, न कि अपताप का कारण है ।

अंत में कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदी ने इतना सुन्दर वर्णन किया है कि पात्र के सोचने, उसके अचेतन में छिपी हुई इच्छाएँ और चेतन स्तर में उसके विपरीत व्यावहार का वर्णन करना कोई आसान कार्य नहीं है । पात्र की सब क्रियाएँ नियम के अनुसार लगती है । सिद्दान्त का अनुसरण प्रतिबिम्बित होता है ।

3·3 आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पात्रों की अपराध भावना :-

अपराध सामन्य तौर पर सभी लोग करते हैं । परन्तु व्यक्ति में एक गुण ऐसा होता है कि वह जो भी गलती करता है वह कभी स्वीकार नहीं करता ।

28· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनाम्दास का पोथा - पृ· 430·

जो उसके अचेतन स्तर में स्थित रहता है और उनको चेतन स्तर में आने से हमेशा रोकने की कोशिश करता है । अगर आ भी जाता है तो उसकी छिपाने के लिए कोई ऐसा कार्य करता है कि अपराध का ज्ञान ही नहीं होता । फिर भी कई बार ऐसा देखा जा सकता हैं कि उसके अचेतन मन में छिपी हुई अपराध भावना का पता किसी-न-किसी रूप में सामने आ ही जाता है ।

आचार्य द्विवेदी के चारों उपन्यासों में कुछ पात्रों को देखा जा सकता है जिनमें अपराध भावना की झलक है । उनको निम्न तालिका में रखा जा सकते है । इन से संबंधित विश्लेषण भी बाद में किया गया है ।

अपराध भावना

उपन्यास	पात्र	पृष्ठ
बाणभट्ट की आत्मकथा	बाणभट्ट	31
	निपुणिका	111
	"	220
चारु चन्द्रलेखा	चन्द्रलेखा	414
	"	429
पुनर्नवा	मंजुला	30
	"	33
	आर्यक	84
-	"	106
	"	131

	चारुदत्त	251
	चन्द्रा	291
अनामदास का पोथा	ऋषिकुमार (रैक्व)	321
	"	326
	"	335
	"	342
	"	448

बाणभट्ट की आत्मकथा :-

बाणभट्ट में अपराध की भावना को देखा जा सकता है । उसकी उदात्त भावना से पीड़ित हो कर ही निपुणिका वहाँ से भाग गयी क्योंकि बाणभट्ट के सामने गलती से कभी दमित इच्छा प्रकट हो सकती है । परन्तु जब वह फिर बाणभट्ट से मिलती है तो भागने का कारण समझाती है । किन्तु उसे बहुत बुरा लगता है । अपने किये पर पश्चाताप करता है और उससे कहता है कि - " निउनिया तू क्यों चली आयी, अब तक कहा रहीं, अब क्या कर रही है ? मैं तुझे दुखी देख रहा हूँ । तुझे इसी अवस्था में छोड़कर मैं यहाँ से हल नहीं सकता । बता पर तू भाग आयी थी ? आज निरन्तर छः वर्षों से मेरा चित्त मुझे धिक्कार रहा है, मुझे ऐसा लगता है कि मैं ही तेरे समस्त दुखों का मूल हूँ । एक बार तू अपने मुख से कह दे कि यह बात गलत है । मैं क्या निर्दोष हूँ । " 29

बाणभट्ट में अपराध की भावना उसके अचेतन में दबी होने के कारण ही वह निपुणिका से चाहता है कि वह उसे माफ कर दें । क्योंकि वह बहुत परेशान था । गलती माँफ हो जाने पर मन की परेशानी भी दूर हो जाती है । इसी तरह से छुटकारा बाणभट्ट भी चाहता है ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग-1, बाणभट्ट की आत्मकथा पृ॰ 31॰

निपुणिका में अपराध भावना को देखा जा सकता है । उसमें इसका उदय इस कारण हुआ कि वह मदनश्री नामक गणिका के घर में आश्रय लेती है । इतना ही नहीं उसके साथ रह जाती है । मदनश्री उसको बाणभट्ट की कुलवधू कहती है । इससे उसको लगता है कि उसने बाणभट्ट का नाम बदनाम कर दिया । वह बाणभट्ट को अपनी बीती हुई कथा सुनाती हुई कहती है - " मैं मदनश्री के साथ उसके विशाल महल में घुस गयी । जिसे एक क्षण पहले " बाणभट्ट की कुलवधू " कहा गया था, उसे गणिका के घर में प्रवेश करने के पहले मर जाना चाहिए था । भट्ट मैंने तुम्हारे पवित्र नाम को कलंकित किया है, मैं अपराधिनी हूँ । " 30

गणिका को समाज में सबसे नीचा स्थान दिया जाता है । भला व्यक्ति भी उनसे व्यावहार करता है तो उनको भी नीच ही माना जाता है । इसी डर से " बाणभट्ट की कुलबधु " अर्थात् निपुणिका आपने-आप को अपराधीनी समझ कर माफी चाहती है । निपुणिका, बाणभट्ट से डरती थी क्योंकि पता नहीं वह कब गुस्से में आ जाये । इसलिए वह उससे कहती है - " हाँ आर्य तुम्हारी उदासी मेरे लिए बड़ी खीच रही है । मैं जब तुमको उदास देखती थी तो यही समझती थी कि मेरा जन्म सार्थक है, तुमने इस गन्धहीन पुन्य को चरणों तक पहुँचाने देने के आयोग्य नहीं समझा । उस रात को तुम्हारी हँसी ने मेरा हृदय दीर्ण- विदीर्ण कर डाला था । परन्तु वह मेरी भूल थी । तुमने नाटक-मण्डली छोड़कर मेरे विकारों को सत्य बना दिया था । हाय, मैंने कितनी दुर्लभ वस्तु का लोभ किया था । मै उसके अयोग्य थी । छः वर्षों के प्रयश्चित से मैं अपना मोह काट सकी । भगवान् पुरस्कार में मुझे फिर तुम्हारा आश्रय दिया पर जो विकार सत्य है वे कहाँ जायेंगे भला ? " 31

निपुणिका को बाणभट्ट के प्रति मोह था जिसके कारण वह बाणभट्ट के पीछे पड़ती है । परन्तु बाणभट्ट नारी के प्रति भावना को चाह कर भी बदल नहीं पाता है । इसी का प्रभाव निपुणिका पर पड़ता है और वह अपनी भावना को उदात्तीकृत कर

30• हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग-1, बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ• 111•
31• - वही - पृ• 220•

लेती है । परन्तु वह अपनी गलती अच्छी तरह समझती थी । फिर भी उसके मन में अपराध की भावना बैठ गयी थी ।

चारू चन्द्रलेखा :-

रानी चन्द्रलेखा में भी अपराध की भावना को देखा जा सकता है । वह अपने पति को छोड़ कर सिद्धों के पीछे उनकी सेवा करने में लगी हुई थी । वह चाहती है कि किसी भी तरह वह वापस अपने पति के पास लौट जायें परन्तु कोई ऐसी शक्ति थी जो उसको लगातार रोक रही थी । जैसे वह सातवाहन से कहती है कि - " महराज मेरे चित्त में यह भय बड़ी गहराई में जाके बैठा है कि मेरे सम्पर्क में आने पर तुम्हारा अमंगल होगा । मैं पतिव्रत धर्म की उपेक्षा से अशुचि हो गयी हूँ, मै सौभाग्य वंचिता, असती हूँ । तुम मेरा स्पर्श न करो, महराज मुझे कही शान्ति नहीं मिल रही है । नारी माता की आज्ञा से मैं इस प्रेमपरायण देवता की परिचर्या में लगी हूँ । व्याकुल चित्त को शान्ति देने का जो सिद्धरस पर मेरा जो विश्वास था वह हिल गया है, पर गया नहीं है, प्रेमरस पाने का जो मेरा प्रयास है वह अधूरा है । वह प्राप्त नहीं हो रहा है । राजन - तुम्हारी नारी दयनीय है, करूणा की पात्र है, अभाजन को दी जानेवाली समवेदना की अधिकारिणी है । " 32

एक और उदाहरण भी इससे मिलता - जुलता है । रानी सातवाहन से कहती है कि - " महराज मै आज अपनी दुर्बलताओं को प्रत्यक्ष देख रही हूँ, पर मेरी सबसे बड़ी शक्ति यह जान पड़ती है कि तुमने मुझे छोड़ नहीं दिया है । तुम मुझे तो गौरव दे रहें हो वह आज तक किसी पति ने किसी पत्नी को नहीं दिया होगा । मैं इसके अनुकूल बन सकूँ, यह प्रयत्न करूँगी । " 33

---

32. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2 चारू चन्द्रलेखा पृ. 415.
33. - वही - पृ. 429.

इन उदाहरणों से ऐसा लगता है कि रानी चन्द्रलेखा अपने किये अपराध को जानती है और उन अपराधों से मुक्ति भी पाने की कोशिश करना चाहती है । साम-न्यत: व्यक्ति अपराध तो करता है परन्तु उसे सुधारने की बात तो कुछ ही लोग चाहते है ।

पुनर्नवा :-

मंजुला राज नर्तकी और खूब सूरत युवती है । हलद्वीप में उसको सभी लोग चाहते भी थे । मंजुला अपने-आपको हीन समझती थी । क्योंकि वह जानती थी कि वह जो कार्य करती है वह कोई अच्छा कार्य नहीं है । इसके साथ ही अहम भावना भी उसकी हीनता को दिखने नहीं देता है । उसके मन की सही भावना का तो देवरात के सामने पता चलता है । वह कहती है कि - " अपराधिनी हूँ आर्य आपको सदा गलत समझा है । मैं बिल्कुल नहीं जानती थी कि कोई मेरे भीतर देवता का भी सन्धान पा सकता है । मुझे अब लगता है कि केवल आज नहीं पहले भी तुमने मेरे भीतर सुप्त देवता को देखा था । मैं आजीवन पाप - पंक में डूबी हुई, तुम्हारी भावनाओं को क्या जानूँ । मैं तो सिर्फ यह जानती रही कि लोग मेरे भीतर जाग्रत पशु को ही देखते है, उसी का सम्मान करते है । " 34

इस से स्पष्ट है कि वह अपने-आप को एक तुच्छ नारी के रूप में देखती है । और साथ ही देवरात के बारे में उसमें गलत धारणा भी बना लिया था जिसके कारण वह पछताती है कि उसने अपराध किया है, गन्धे विचारों को पाल कर ।

मंजुला अपने आप को पहचानती थी । उसमें बाद में परिवर्तन भी आता है परन्तु उसके अचेतन में छिपी अपराध की भावना बाराबर रहती है जिसको महसूस वह मरते समय भी करती है । देवरात से वह इस प्रकार कहती है - " पापिनी से दूर रहो देव । यदि इस अदमा के ऊपर दया है तो अपना हाथ हटा लो और उस बच्ची को देखो । " 35

---

34. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 29.

35. - वही - पृ. 33.

आर्यक अपनी पत्नी मृणालमंजरी को छोड़कर घर से भाग जाता है । इस का कारण यह था कि एक तो वह यशस्वी बनना चाहता था और दूसरा कारण चन्द्रा नाम की औरत उसके पीछे पड़ गयी थी । उसे समाज का डर था इसलिए वह भाग जाता है । धीरक की जब भेंट श्यामरूप से होती है तो वह कहता है - " इस चन्द्रा ने कई बार आर्यक भैया पर डोरे डालने की कोशिश की थी । चिट्ठियाँ भी भेजी थी पर आर्यक भैया को वह अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकी । उसकी चिट्ठयाँ उन्होंने भाभी को दे दी थी । भाभी ने एक बार परिहास में मुझसे इन चिट्ठियों की बात बता दी थी । " 36

आर्यक अपनी पत्नी को चिट्ठियाँ इसलिए लिखता है कि वह चाहता नहीं था कि उसके और उसकी पत्नी के बीच कोई शंका का बीज जमे । इसके साथ ही उसके मन में अपराध - भावना होती है । उसके न चाहने पर भी चन्द्रा उसके साथ सब जगह जाती है ।

एक और उदाहरण भी इसी सन्दर्भ से सम्बन्धित मिलता है । आर्यक सोचता है - " वहाँ मृणालमंजरी से भेंट होगी । क्या मुहँ लेकर उसके सामने वह उपस्थित होगा ? मृणाल को उसने क्यों छोड़ दिया ? उसका क्या अपराध था ? पर आर्यक का भी क्या अपराध था ? चन्द्रा उसके गले पड गयी । उससे पिण्ड छुड़ाने के लिए वह भागा । वहाँ चन्द्रा उसका पीछा करती गंगापार भी आ पहुँची । उसने घृणा से मुँह फेर लिया । लेकिन चन्द्रा है कि हटने का नाम ही नहीं लेती । आर्यक को भय था कि लोग क्या सोचेंगे । वह और भी पूरब की ओर भागा । चन्द्रा ने पीछा नहीं छोड़ा । उसे कायर पुरूष कह कर सेवा में जुट जाती और आर्यक पानी-पानी हो जाता । " 37

---

36. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा - पृ. 84.
37. - वही - पृ. 106 - 107.

आर्यक को समझ में नहीं आ रहा है कि उसका अपराध क्या है ? परन्तु वह जानता जरूर था कि उसमें अपराध की भावना जरूर है । नहीं तो वह क्यों इस तरह भागता फिरता । इसीलिए वह अपनी पत्नी से भी मुँह छिपाना चाहता है । वह सोचता था कि उसकी पत्नी अपराध की माफ नहीं कर पायेगी । पहले वह अप-राधी न होने पर भी अपराध कर बैठता है ।

देवरात आर्यक की खोज में निकलते हैं तो उनकी भेंट चन्द्रमौली से होती है जो उनको आर्यक के बारे में बताते हैं - " हाँ आर्य, एक दिन मैंने उनके दुख की बात जानने का प्रयत्न किया । वे समुद्र के समान गम्भीर जान पड़े । अपना दुख छिपायें ही रहे । एक दिन बडे कातर दिख रहे थे तो मुझे बड़ा कष्ट हुआ । मैंने कुछ रोष के साथ कहा कि मित्र गोपाल तुम मुझ पर विश्वास नहीं करते, और अपने दुख का रंचमात्र भी आयास नहीं देते, मैं तुम्हारे कष्ट का सहभागी होने का सुयोग भी नहीं पा रहा हूँ । वे मेरी बात से विचलित हुए और एक क्षण की दुर्बलता में कह गये - " मित्र, सदा यही सोचता रहा हूँ कि लोग क्या कहेंगे, एक बात पर भी यह नहीं सोचा कि मृणालमंजरी क्या सोचेगी । यह विषय शल्य हृदय में मृणालमंजरी उसकी प्रिय होगी ।"[38]

इन वाक्यों से पता चलता है कि उसके मन में अभी भी अपराध भावना है और उसके साथ समाज का भी डर था जो उसको निरन्तर परेशान करती रहती थी । जैसे - की वह किसी से अपने कष्ट के बारे में बातचीत नहीं करता था । बातों-बातों में ही उसके मन में छुपी अपराध-भावना जीभ से फिसल जाता है । परन्तु वह अपना परिचय ठीक से नहीं देता है ।

चारुदत्त अपनी पत्नी धूता से वसंतसेना के बारे में बात करते में शर्माता है । क्योंकि उसमें अपराध भावना लज्जा के रूप में छिपी हुयी थी इसीलिए धूता के प्रश्नों का उत्तर देने से बचता है । उदाहरण के लिए - " धूता ने कुछ याद करके पूछा, " आग कि धर लगायी गयी थी वसन्तसेना बहिन का घर तो सुरक्षित है न ? " चारुदत्त

38• हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा - पृ• 131•

वसन्तसेना के बारे में बहुत चिन्तित थे । यह भी पता लगा दिया था कि आग उधर नहीं फैली है । पर अभी तक उन्हें यह पता नहीं था कि वसन्तसेना है कहाँ । यथा-साध्य वे पता लगाने का प्रयत्न भी कर रहे थे । पर धूता से यह कहने में वे लज्जा रहे थे । " 39

उक्त पंक्तियों से लगता है कि धूता को अपने पति का वसन्तसेना के साथ सम्बन्ध से कोई कष्ट नहीं होता है । अपराध की भावना स्वंय चारूदत्त में ही स्थित है । इसलिए मन ही मन सोचता है कि वह किस प्रकार वसन्तसेना के बारे में बातें करें ।

आर्यक के पीछे हमेशा रहने वाली चन्द्रा के मन में कभी भी अपनी करनी पर पश्चाताप नहीं होता है । परन्तु जब उसको पता चलता है कि आर्यक आ रहा है इस पर चन्द्रा का हाल कुछ इस प्रकार रहता है - " चन्द्रा ध्यान नहीं कर सकी किसी अस्पष्ट पीड़ा से वह व्याकुल थी । चुपचाप खिसक आयी और जाकर एकान्त में बैठ गयी । उसका चित्त पहली बार इस प्रकार उक्षिप्त हुआ था । वह स्वयं को नहीं समझ पा रही थी । चली थी तो उत्साह था आर्यक को ढूँढ निकालेगी । आर्यक बिना प्रयास के ही मिल गया । अगर वह स्वयं खोज निकालती तो मन इतना भारी नहीं होता । वह आर्यक को पकड़ कर मृणाल के पास ले आती । उस समय बात कुछ और होती । अब आर्यक स्वयं आ रहा है । उसे देखकर वही आर्यक फिर तो नहीं भाग खड़ा होगा । अपने किये का अनुताप उसे कभी नहीं हुआ था । आज हो रहा है । अगर आर्यक उसे देखकर बिदक गया, तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा । कैसे बचा जाय । " 40

चन्द्रा को देखते ही आर्यक भाग जाता था क्योंकि उससे मिलना अपराध समझता था । उसे अपनी पत्नी के साथ समाज का भी डर था । इसका पता चन्द्रा को अच्छी तरह था इसीलिए वह सोच में पड़ जाती है क्योंकि उसे भी पता था कि वह जो कुछ कर रही है, अपराध है । ऐसी भावना उसके मन में कभी जागी नहीं थी ।

---

39. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा - पृ. 251.

40. - वही - पृ. 291 - 292

अनामदास का पोथा :-

इस उपन्यास में रैक्व के मन में अपराध की भावना इतनी गहराई में पहुँच गई कि जिसका ज्ञान उसे खुद नहीं था । रैक्व को कई संदर्भों में अपराध भावना से पीड़ित पाया जाता है । वह सांसारिक ज्ञान से तो वंचित था परन्तु आध्यात्मिक से नहीं । इसी कारण वह अच्छी तरह से पाप और पुण्य का ज्ञान रखता था । इसी कारण " पाप " शब्द का प्रयोग शुभा करती है तो वह उनके मन की गहराई तक पहुँच जाती है । " पाप " शब्द की तुलना वह अपराध से करती है । देखो ऋषिकुमार ! मैं महाराज जानश्रुति की कन्या हूँ, तुम्हें इतनी तो जानकारी होनी ही चाहिए कि इस तरह से स्त्रियों का स्पर्श करना अनुचित है । पाप है, परन्तु मैं तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूँ । " 41

इसी सन्दर्भ से सम्बन्धित एक और उदाहरण भी देखिए आचार्य से रैक्व कहता है कि " शुभा ने मुझसे कहा है कि तुम्हें आचार्य का सामना करना चाहिए । नहीं तो पाप होगा । अच्छा आचार्य, मुझे बता दें कि मैं आपका सम्मान कैसे करूँ ? न जाने इस पाप का दण्ड कितना भोगना पड़ेगा ? " 42

पाप शब्द ने रैक्व को इतना अधिक प्रभावित किया था कि वह उससे छुटकारा पाने के लिए बार-बार अपना पीठ खुजलाता रहता है । माता ऋतुम्भरा के पूछने पर कहता है - " नहीं माँ, वह तो पाप का फल है । मैंने पाप किया था, उसी का दण्ड भोग रहा हूँ । यहाँ बड़ी सनसनाहट मालूम होती है । 43

41• हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ• 32•

42• - वही - पृ• 335•

43• - वही - पृ• 342•

जब रैक्व की भेंट आखिर में शुभा से हो ही जाती है तब वह अपने पीठ को देखते हुए कहता है - "हो क्या गया है, पाप का फल भोग रहा हूँ । तुमने कहा था न, कि किशोर की अपनी पीठ पर किसी किशोरी को बैठाने की बात सोचना भी पाप है ? मै उस समय नही माना, पाप लग गया । सब समय पीठ में खुजली होती है और तुम्हारी याद आने पर वह तो छाती तक छेद डालती है । माताजी तो कहती थी कि वह पाप नहीं केवल अभिलाष भाव है, मैंने तुम्हें किसी-न-किसी प्रकार पाने की अभिलाषा की है, इसलिए पीठ में खुजली होती है, पर आश्वलायन कहता है कि यह अभिलाष भाव भी पाप ही है क्योंकि तुमने शुभा की स्वीकृति पाये बिना अभिलाषा की है । शुभा ही उसे ठीक कर सकती है । ठीक कर दो न मुझे, बड़ा कष्ट हो रहा है ।"[44]

इन उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि रैक्व में अपराध भावना के होने के कारण उसकी पीठ में लगातार खुजली होती थी । इसका कारण यह है कि रैक्व जब अपना पीठ दिखा कर शुभा को बैठ जाने के लिए कहते पर वह अनुचित, पाप आदि शब्द कहती है । और तुरन्त रैक्व के पीठ में एक प्रकार की सनसनाहट शुरू हो जाती है जो आखिर तक बनी रहती है । तब से जब भी शुभा के बारे में सोचता तो तुरन्त उसके किये पाप अर्थात् अपराध की याद आ जाती जिसके कारण बिना उसके ज्ञान के ही उसका हाथ पीठ पर पहुँच जाता था । जब शुभा से मिलता है तो वह अपने पाप के बारे में ही शुभा से बोलता है और साथ ही माता ऋतुम्भरा और अश्वायन के द्वारा इस के बारे में विचार भी व्यक्त करता है । वह इतना अधिक भोला था कि वह सोचता था कि शुभा के कारण उसको कष्ट सहना पड़ रहा है जिसका परिहार केवल उसके कारण ही हो सकता है । पीठ की खुजली का कारण एक और भी हो सकता है कि शुभा से बिछुड़ने के समय उसके पीठ में खुजली शुरू हुई जो अभिलाषा के रूप में दबी हुई थी । उसकी पूर्ति उपन्यास के अन्त में होती हुई देखी जा सकती है ।

उपन्यासों में अपराध भावना का तो सामान्य तौर पर देखा जा सकता है जो आचार्य द्विवेदी जी के उपन्यासों में अच्छे ढंग से पात्रों के द्वारा दर्शाया गया है ।

---

44. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ.448-449

3·4 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न रक्षा युक्तियाँ :-

अन्तर्द्वन्द्व और कुण्ठा से बचने के प्रयास मे व्यक्ति इन मनोरचनाओं का उपयोग प्रतिदिन अपने दैनिक जीवन के व्यावहार में करता है । इसके उपयोग से व्यक्ति का संतुलन और समायोजन बना रहता है ।

ब्राउन के अनुसार - " मनोरचनाएँ वह चेतन और अचेतन प्रक्रियाएँ है जिनसे आन्तरिक संघर्ष कम होता है अथवा समाप्त हो जाता है । " [45]

कोलमैन के अनुसार (Coleman, 1914, ego defence mechanism) की परिभाषा यो हो सक्ती है कि यह व्यक्तियों की प्रति क्रिया का वह प्रकार है जिससे व्यक्ति में उपयुक्तता की भावना बनी रहती है तथा इसकी सहायता से व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से परेशानी उपस्थित करने वाली परिस्थितियों का सामना करता है, बहुधा ये प्रति क्रियाएँ चेतन तथा वास्तविकता को विकृत करनेवाली होती है । " [46]

आचार्य द्विवेदी जी के पात्रों में रक्षा युक्तियों का सफल अनुप्रयोग किया गया है । विभिन्न रक्षा - युक्तियाँ जो पात्रों द्वारा प्रयोग आयी है, वे इस प्रकार है जो निम्न तालिका में सूचित है ।

विभिन्न रक्षा युक्तियाँ

उपन्यास	पात्र	रक्षा युक्तियाँ	पृष्ठ
बाणभट्ट की आत्मकथा	बाणभट्ट	पालयन	26
	निपुणिका	वास्तविकता से पलायन	31-32

45· आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान प्रीति शर्मा - पृ· 447·
46· - वही - पृ· 441·

	बाणभट्ट	शमन	29
	"	उदात्तीकरण (सोचने)	28
	"	"	28
	"	उदात्तीकरण (लगाव)	78
	निपुणिका	"	61
	बाणभट्ट	" (सोचना)	166
	सुचरिता	"	184
चारु चन्द्रलेख	तापसबाला	उदात्तीकरण	371
चारु चन्द्रलेख	चन्द्रलेख	युक्तिकरण	370-371
	राजा सातवाहन	" और उदात्तीकरण	411
पुनर्नवा	देवरात	उदात्तीकरण	19
	"	शमन	22
	"	साध्यर्थ	62
	"	उदात्तीकरण	62
	आर्यक	पलायन, युक्तिकरण	106-107
	चन्द्र	उदात्तीकरण	294
अनामदास का पोथा	रैक्व	साध्यर्य	323
	जाबाला	शमन	331
	रैक्व	उदात्तीकरण (सोचना)	334

जाबाला	शमन	357
रैक्व	"	371
"	उदात्तीकरण	371
जाबाला	साहचर्य	408
ऋतुका	उदात्तीकरण	414

बाणभट्ट की आत्मकथा :-

इस उपन्यास का नायक बाणभट्ट के मन में हीन भावना रहती है । वह अक्सर यह सोचता रहता है कि उसके पूर्वजों के जैसा वह विद्वान नहीं बन पाया । जब भी उसके मन में ऐसे विचार उत्पन्न होते थे तो तुरन्त वह वहाँ से भाग निकल जाने की बात सोचता था । उसके इन शब्दों के देखिए --

" मैंने एक बार आकाश की ओर देखा । मुझे ऐसा लगा कि मेरे पितामहा-गण मेरे ऊपर दुख के अश्रु बरसा रहे है । कहाँ वेदाध्यायियों का यशोंशु शुक्लीकृत - सप्त विष्च्य " वंश और कहाँ मैं अभागा बण्ड ! हे धरित्री, फट जाओं, ताकि मै छिप जाऊँ । " 47

इस तरह वास्तविकता से भाग निकल जाने के विचारों को रक्षायुक्ति में पलायनवाद कहते हैं । इसमें व्यक्ति अपनी अयोग्यता छिपाने के लिए मार्ग खोजता है । निपुणिका, बाणभट्ट की ओर आकर्षित हो चुकी थी । जिसका ज्ञान उसको था और वह यह भी अच्छी तरह से जानती थी कि बाणभट्ट नारी का देवी के समान आदर करता है । इसके आलावा और किसी भी दृष्टि से वह देख भी नहीं सकता है । वह अपनी

---

47. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा पृ० 26

इच्छाओं की पूर्ति न होने का कारण भी जानती थी । इसलिए वह वास्तविकता से पलायन करती है । इस तरह की मनोरचना में जब व्यक्ति वास्तविकता को जानते हुए भी उनका सामना नहीं करना चाहता है तब वह भाग निकलता है । जैसे निपुणिका ने किया । उसके शब्दों में --

" हाँ भट्ट, मेरे भाग जाने का कारण तुम्हीं हो परन्तु दोष तुम्हारा नहीं है । दोष मेरा ही है । तुम्हारे ऊपर मुझे मोह था । उस अभिनय की रात को मुझे एक क्षण के लिए ऐसा लगा था कि मेरी जीत होनेवाली है, परन्तु दूसरे ही क्षण तुमने मेरी आशा को चूर कर दिया । निर्दयी तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी-देह को देव - मन्दिर के समान पवित्र मानते हो, पर एक बार भी तुमने समझा होता कि यह मन्दिर हाड़-माँस का है, ईंट-चूने का नहीं । जिस क्षण में अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलिसात कर दिया । उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़ - पाषाण पिण्ड हो, तुम्हारे भीतर न देवता है न पशु है एक अडिग जड़ता । मैं इसलिए वहाँ ठहर नहीं सकी । जीवन में मैंने उसके बाद बहुत दुख झेले हैं पर उस क्षण भर के प्रात्याख्यान के समान कष्ट मुझे कभी नहीं हुआ । " 48

बाणभट्ट द्वारा अपनी इच्छाओं का शमन करते देखा जा सकता है । " क्षण भर में मेरे मानस समुद्र में विक्षोभ का तुफान उठा और शान्त हो गया । मैं सदा अपने को सँभाल सकने में समर्थ रहा हूँ । इस बात का मुझे अभिमान है । मैंने एक बार आग्रह भरी आवाज में पुकारा - " निउनिया ! " निपुणिका ठिठककर खड़ी हो गयी । उसका बायाँ हाथ कटिदेश पर न्यस्त था, कंकण कलाई पर सरक आया था, दाहिना हाथ शिथिल श्यामा लता के समान झूल पड़ा था, उसकी कमनीय देव लता नृत्यभंग से जरा झुक गयी थी, मुखमण्डल भाण-बिन्दुओं से परिपूर्ण था । मुझे " मालविकाग्निमित्र " की मालविका याद आ गयी ।" 49

---

48. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. 31-32.

49. - वही - पृ. 29.

शमन व्यक्तित्व करता जब उसकी अपूर्ण इच्छाएँ बार-बार चेतन स्तर पर आती रहती है । और जिसको वह अपने चेतन स्तर से दूर करना चाहता है । जैसे बाणभट्ट अपनी इच्छा को हमेशा अपनी काबू में रखता है । वह चाह कर भी निपुणिका से कुछ नहीं कहता है ।

प्रत्येक व्यक्ति को घर का वातावरण जैसे रहन - सहन, व्यवहार, सोचने का ढंग आदि बहुत हद तक प्रभावित करता है । बाणभट्ट को भी उनके घर के संस्कारों ने बहुत अधिक प्रभावित किया था । उदाहरण के लिए नारी का सम्मान करना । इसका प्रभाव बाणभट्ट पर इतना अधिक था कि वे नारी को उदात्त भावना के अलावा और किसी रूप में सोच भी नहीं सकता था । इसके कई उदाहरण मिल जाते हैं जैसे - " मेरी मण्डली की स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुखी थीं । बहुत छुटपन से ही मैं स्त्री का सम्मान करना जानता हूँ । साधारणत: जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है, उनमें एक देवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं । मैं नहीं भूलता । मैं स्त्री शरीर को देव-मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ । उस पर की गयी अनतुकूल टीकाओं को मैं सहन नहीं कर सकता । इसलिए मैंने मण्डली में ऐसे कठोर नियम बना रखे थे कि स्त्रियों की इच्छा के विरुद्ध उनसे कोई बोल तक नहीं सकता था । "50

इस तरह की भावना को मनोरचना में उदात्तीकरण कहते है । उदात्तीकरण में व्यक्ति जब अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता है तो वह अपने-आप को किसी तरह के उदात्त कार्य करने लगता है या उसके सोचने के ढंग में भी परिवर्तन आ जाता है । जैसे बाणभट्ट निपुणिका की ओर आकर्षित होता है फिर भी वह यह कभी भी पता लगने नहीं देता है । उलटे अपनी उदात्त भावना को बनायें रखता है । नारी के सौन्दर्य को भी निखारता है जैसे - " निपुणिका बहुत अधिक सुन्दर नहीं थी । उसका रंग अवश्य शेफालिका के कुसुमलाल के रंग से मिलता था, परन्तु उसकी सबसे बड़ी चारुता-सम्पत्ति उसकी आँखें और अंगुलियाँ ही थी । अंगुलियों को मैं बहुत महत्वपूर्ण सौन्दर्य पादान समझता हूँ । " 51

---

50. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. 28.

51. - वही -

एक और उदाहरण बाणभट्ट का नारी के प्रति भावना को देखा जा सकता है -

" ना बाबा झूठ क्या मै समझ - बुझ कर बोल रहा हूँ, कोई बुलवा नहीं रहा है । भाट्टनी के प्रति मेरी पूज्य भावना है, यह ठीक बात है । " 52

निपुणिका, बाणभट्ट को चाहती थी परन्तु उसकी इच्छा की भी पूर्ति न हो पायी तो वह अपने में बाणभट्ट के प्रति उदात्त भावना को जगाती है । उनके शब्दों में- " यहा तो तुम नहीं समझते कि कौन हारता है । यदि तुम समझ लेते कि कौन हारता है । यदि तुम समझ लेते कि कौन हारता है तो यह भी समझ लेते कि कौन डरता है । भट्ट तुम भोले हो । तुम इस पृथ्वी पर शरीर धारी देखता है । " 53

भाट्टनी के प्रति जिस तरह की उदात्त भावना बाणभट्ट के मन में थी ठीक उसी तरह की उदात्त भावना सुचरिता के प्रति भी रहती है । इसका अर्थ यह नहीं कि सुचरिता की ओर भी आसक्त हुआ था । बाणभट्ट का उसके प्रति विचार है कि - " मैं अभी तक उसका पूरा परिचय नहीं पा सका हूँ पर जितना पा सका हूँ, उतने से सहज ही समझ सका हूँ कि वह श्रद्धास्पद महिला है । " 54

सुचरिता में भी बाणभट्ट के प्रति उदात्त भावना को देखा जा सकता है - " तुम नारायण की मूर्ति हो, आर्य मैं तुमसे सत्य कहती हूँ । " 55

चारू चन्द्रलेखा :-

चन्द्रलेखा की भेंट तापस बाला से होती है जिसने भी ठीक उस की तरह अपने पति को छोड़ कर सिद्धियों के पीछे दौडती रही जिसका परिणाम यह हुआ कि " मैंने ही बहन, इनको झिड़ककर वैराग्य-मार्ग की ओर प्रवृत्त किया था । इन्होंने अनिच्छापूर्वक

---

52. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. 78.
53. - वही - पृ. 61. (54) - वही - पृ. 166.
55. - वही - पृ. 184.

केवल मेरा मन रखने के लिए साधना के दुरारोह पथ पर चढ़ना शुरू किया । हाय, जब मुझे होश हुआ तो वे बहुत दूर चले गये थे । हाय, बहन, मैं उनको पा सकी हूँ पर वे मुझे नही पा सके । " 56

इस तापसबाला के पति ने संसारिक बन्धनों को छोड़ दिया तो इसका कारण वह स्वयं थी । क्योंकि उसके पति चाहते थे कि उनकी पत्नी उनके साथ सदा सुखी रहें, परन्तु ऐसा नहीं हो पाया, वह निरन्तर अपनी ही धुन में रहती थी । इसी लिए वह सन्यासी हो गया । मनोरचना की भाषा में इसको उदात्तीकरण कहा जा सकता है । जब तापसबाला के पति की इच्छा पूर्ति नहीं हुई तो उन्होंने उदात्त मार्ग को ढूंढ निकाला । चाहते तो कोई दूसरा मार्ग निकाल कर अपनी पत्नी को रास्ते पर ला सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया ।

तापसबाला की बात सुनकर चन्द्रलेखा भी अपने पति के बारे में सोचती है - " चन्द्रलेखा का हृदय सनकी खा गया । हाय वह पर क्या सुन रही है ? वह भी क्या अपने देवता तुल्य पति को छोड़कर सिद्धियों के पीछे पागल नहीं है ? लेकिन उसने अपने को संभाल लिया । वह सिद्धियों के पीछे पागल नहीं है । सिद्धियों को वह तिनके के बराबर आदर नहीं देती । " 57

चन्द्रलेखा अच्छी तरह से जानती थी कि वह जो कुछ कर रही है वह बिलकुल ठीक नहीं है । क्योंकि राजा सातवाहन तापसबाला के पति के समान ही चन्द्रलेखा को चाहते थे, परन्तु वे अपनी गलती मानने के लिए तैयार नहीं है । इस संदर्भ से पता चलता है कि वह युक्तिकरण कर रही है । मनोरचनाओं में युक्तिकरण का अर्थ - व्यक्ति अपनी गलती को पहचानता है फिर भी वह मानने के लिए तैयार नहीं होता है और अपनी गलती का सहारा भी देता है ।

---

56. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली - भाग - 1, चारुचन्द्रलेखा - पृ. 371.
57. - वही -

राजा सातवाहन रानी की बातों में आ कर रानी को सिद्धियों के पीछे भेज देता है । वह खुद भी दलित मनुष्यों के दुख-सुख को अपना मान कर उनकी सहायता करने के लिए समय निकलता है । वे तो रानी चन्द्रलेखा के साथ सुखी रहना चाहते थे परन्तु ऐसा न होने के कारण उनमें उदात्तिकरण देखा जा सकता है । राजा सातवाहन इस सन्दर्भ में कहते है - " देवि मुझसे बड़ा प्रमाद हुआ जो मैंने तुम्हे अरक्षित भाव से इस साधना के कठोर मार्ग पर जाने दिया । मैं तो तुम्हारी ही आज्ञा का पालन कर रहा हूँ । तुमने कहा था राजन, सारी प्रजा अज्ञान, अभाव और विशृंखलित आत्मयुद्ध के घिनौने कुपरिणाम सबसे अधिक प्रजा को ही भोगने पड़ते है । जहाँ लाख-लाख निरीह प्रजा अकारण दुर्दशाग्रस्त हो रही हो वहाँ सबसे बड़ा पुण्य संकल्प उसमें आत्मबल का संचार करना ही है । तुमने स्वयं इस मन्त्र को जन-जन के निकट प्रचारित किया और अपने इस सेवक को इस कार्य के लिए प्रेरित किया । तुम्हारे इस आदेश का पालन करने में ऐसा उलझ कि मुझे अवकाश ही नहीं मिला कि तुम्हारी ओर कुछ अधिक ध्यान दूँ । रह रह कर मेरे मन में यह लालसा बलवती हो उठती थी कि तुम आकर देखो कि तुम्हारा सातवाहन मनवचन कर्म से तुम्हारी इच्छा के अनुसार काम कर रहा है । " 58

तापसबाला और चन्द्रलेखा दोनों के पतियों में उदात्तीकरण को देखा जा सकता है । जो उनके पत्नीयों के व्यवहार के कारण ही आया । सिद्धियों के पीछे पड़ कर अपने पतियों की सेवा करना छोड़ दी थी । राजा सातवाहन मेने उदात्तीकरण के साथ-साथ युक्तिकरण (रक्षा युक्ति) को भी देखा जा सकता है । वह चन्द्रलेखा को तो नागनाथ पास जाने से रोक नहीं पाता है । और जब खुद भी जन-सेवा में लग जाता है तो वह सोचता है कि वह तो रानी की आज्ञा का पालन ही तो कर रहा है । इस प्रकार वह असल में अपना मन को ही बहला रहा है ।

<u>पुनर्नवा</u> :-

यह अक्सर देखा जाता है कि व्यक्ति अपनी किसी चीज या व्यक्ति को खो ले जिससे उसका लगाव अधिक हो उसमें एक प्रकार की विरक्ती पैदा हो जाती है ।

---

58. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थावली - भाग - 1, चारुचन्द्रलेखा पृ. 41.

उपन्यास में देवरात के जीवन - परिवर्तन के कारण मिलते है जैसे - " विजयी देवरात लौटे तो उनका संसार नष्ट हो चुका था । उन्हें शोक और निराशा ने विक्षिप्त बना दिया राजपाट छोड़कर वे रमता - राम बन गये और देश - विदेश घूमते रहे पर कहीं शान्ति नहीं मिली । " 59 इसके अलावा एक और उदाहरण भी मिलता है - " देवरात दीन - दुखियों की सेवा में सदा - तत्पर रहा करते थे । " 60

देवरात के जीवन में उदात्तीकरण को देखा जा सकता है कि वे संसार की मोह-माया को छोड़ कर दीन - दुखियों की सेवा करने लगे । उदात्तीकरण में व्यक्ति को जब लगता है कि अपनी कोई इच्छा या लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो पाती है तो वह कोई दूसरा मार्ग खोज निकालता है जिससे उसका मन उन अपूर्ण बातों को भूल जायें ।

चन्द्रा नाम की युवती आर्यक के पीछे पड़ जाती है । समाज की परवाह किये बिना ही उसके पीछे-पीछे घूमती रहती है । आखिर में उसको पता चलता है कि आर्यक अपनी पत्नी से मिलने जा रहा है जिसको वह कई दिनों पहले छोड़ दिया था । इस पर वह जो कुछ सोचती है उसमें उदात्त भावना को देखा जा सकता है - " चन्द्रा उसी प्रकार तन्द्रिल अवस्था में देर तक पडी रहीं । आर्यक यदि उसे देखकर विदक गया तो सारा खेल बिगड़ जायेगा । अभिमान अगर मन में पैदा हुआ तो वह उसे उखाड़कर फैंक देती । आर्यक यदि उसे देखकर विदक गया तो सारा खेल बिगड़ जायेगा । आर्यक सुखी रहें मृणाल सुखी रहें, उसे कोई लोभ नहीं है । " 61 इन शब्दों में उनसे चन्द्रा के मन की बात का पता चलता है । वह आर्यक को बहुत चाहती तो है परन्तु उसकी पत्नी और बेटे को देख कर वह यह नहीं चाहती है कि उसके कारण आर्यक का घर टूट जायें । इस तरह की भावना को मनोरचना में उदात्त भावना कहते है । चन्द्रा के सोचने में परिवर्तन आर्यक के अलगाव के कारण आया ।

---

59. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 62.
60. - वही - पृ. 19.
61. - वही - पृ. 274.

देवरात अपनी इच्छाओं को लगातार दमित करते हुए पाये जाते है । देवरात शान्ति की खोज में घूमते-घूमते हलद्वीप पहुँचते है । इसका कारण केवल वे ही जानते थे क्योंकि उनका हृदय का घाव वहाँ आकर ताज़ा हो गया था । घाव को ताज़ा करने वाली मंजुला थी । जिसको देखकर देवरात को लगा कि वह तो बिलकुल शर्मिष्ठा जैसी है । उनके शब्दों में - " उन्हें ऐसा लगा कि शर्मिष्ठा ही स्वर्ग से उतरकर आ रही है । वही रूप, वहीं रंग, वही कान्ति, वही हँसी । मंजुला का कद, जरूर जौ-भर छोटा था । उनके हृदय में टीस अनुभूत हुई पर साथ ही सन्तोष भी हुआ । जिस रूप को देखने के लिए उनका हृदय व्याकुल था, वह अब भी देखने को मिल सकता है । यह नहीं कि वे शर्मिष्ठा और मंजुला के अन्तर को नहीं समझ सके । भिन्न है पर फिर भी उनका हल्का आयास मिल रहा है । वे साभिलाष दृष्टि से एकटक मंजुला को देखते रह गये । " [62] मनोरचना में इस तरह के दृश्य को साहचर्य कहते है जिसमें व्यक्ति किसी दूसरे को देख कर अपने दोस्त की याद करता है या कोई विशेष वस्तु या व्यक्ति को देख-कर बीते हुए दिनों की याद करता है । जैसे - इस संदर्भ में देवरात को मंजुला को देखकर लग रहा है कि शर्मिष्ठा ही खड़ी हुई हो ।

साहचर्य के साथ-साथ शमन-क्रिया को भी देखा जा सकता है । वे अपनी मन की बात को किसी से कभी न कह कर अपने मन में ही दबा कर रखते है । वे अगर चाहते तो बड़ी आसानी से मंजुला से अपनी मन की बात कह सकते थे परन्तु ऐसा नहीं करते है ।

आर्यक अपनी पत्नी और बेटे को छोड़ कर भाग जाने के कारण उसमें अपराधी भावना पैदा हो जाती है । उसके भागने का कारण चन्द्रा थी क्योंकि वह पीछे पड़ गयी थी । वह अपने-आप से परेशान है जिसे निम्न रूप में देखा जा सकता है - " वहाँ मृणालमंजरी से भेंट होगी । क्या मुँह लेकर उसके सामने वह उपस्थित होगा ? मृणाल को उसने क्यों छोड़ दिया ? उसका क्या अपराध था ? पर आर्यक का भी क्या अप-राध था ? चन्द्रा उसके गले पड़ गयी । उससे पिण्ड छुड़ाने के लिए वह भागा । पर चन्द्रा उसका पीछा करती गंगापार भी आ पहुँची । " [63]

62· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा - पृ· 62 - 63·

63· - वही - पृ· 106 - 107·

इन पंक्तियों को पढ़ने से लगता है कि आर्यक में पलायन के लक्षण है । वह चाहता तो भागे बिना अपनी पत्नी को साफ-साफ समझा सकता था परन्तु उसने ऐसा नहीं किया । इससे पता चलता है कि वह वास्तविकता का सामना करना नहीं चाहता था । इसके अलावा आर्यक में युक्तिकरण को भी देखा जा सकता है । आर्यक जानता था कि वह जो कुछ कर रहा है वह गलत है । अपने परिवार को छोड़ कर भाग जाना चन्द्रा जो कोई भी पत्र उसको लिखती है वह सब अपनी पत्नी मृणालमंजरी को देता है । वह सिर्फ स्पष्ट करने के लिए कि उसकी कोई गलती नहीं है । ऐसा करता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अपने किये अपराध को न मान कर उलटा सफाई दे रहा है ताकि मृणाल कोई गलत फ़हमी में न पड़े ।

अनामदास का पोथा :-

जाबाला (शुभा) रैक्व की ओर आकर्षित हो चुकी थी जिसके कारण वह कभी भी उसके बारे में ही सोचती रहती थी । इसके साथ वह अकसर उदास भी रहती थी जिसका कारण कोई न जान पाया और वह खुद भी अपने मन की बातों को दिल खोल कर किसी से नहीं कह पाती थी । वह कई बार सोचती थी कि रैक्व के बारे में आचार्य को बता दें, परन्तु कुछ उसे ऐसा करने से रोकता था । जहाँ कि रैक्व बिलकुल स्वभाव में विपरीत है, वह सभी से शुभा की सुन्दरता और विद्वता के बारे में कहता फिरता है ।

मनोरचना में अचेतन स्तर की इच्छाओं को चेतन स्तर पर न आने देने को शमन कहते है । इसमें व्यक्ति चाह कर अपनी इच्छाओं को अचेतन में दबा कर रखता है, उनको चेतन स्तर पर आने नहीं देता है । जैसे जाबाला बड़ी आसानी से रैक्व को पा सकती थी अगर वह अपने मन की बातों को बता देती, परन्तु वह समाज के डर से ऐसा नहीं कर पाती है । और अपने मन की व्यथा को बढ़ने देती है । उपन्यास में इस के संकेत भी मिलते है जैसे - "उसके मन में कई बार आया कि तातपाद से बता दे कि उसकी भेंट उससे (रैक्व) हो चुकी है पर हर बार कोई लज्जा उसकी वाणी रूद्ध कर गयी ।" 64

---

64. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा- पृ. 331.

ऐसे कई और भी उदाहरण मिल जाते है जिससे जाबाला {शुभा} के मन में दबी हुयी बातों का पता चलता है । लेकिन परेशान वह स्वयं थी । जब तक वह जानती थी कि तरुण तापस आसपास ही नहीं है, वह उस टूटी गाड़ी की छाया में बैठा पीठ खुजलाया करता है और समाधि लगाये बैठा रहता है तब तक उसे आशा थी कि एक बार उससे मिलेगी । देखेंगी कि महाभागा शुभा को देखकर उसके चेहरे पर क्या भाव आते हैं । पर उसे कोई युक्ति नहीं सूझती थी कि कैसे उससे मिले । वह आचार्य से अपनी आकांक्षा प्रकट करती तो वह बहुत कठिन नहीं होता, पर कैसे कहें ? कोई अज्ञात भावना उसका कण्ठ रोध कर देती थी । हर बार वह मन मसोसकर रह जाती । बिचारा बड़ा ही भोला है उसे उचित - अनुचित का ज्ञान भी तो नहीं है । बुद्धिमान है । स्वयं परिक्षित सत्य में विश्वास रखने वाला है श्रद्धावान है, पर संसार से एकदम अपरिचित है ।" 65

रैक्व इतना अधिक भोला था कि उसको इतना भी भान नहीं था कि वह जाबाला {शुभा} की ओर आकर्षित हो चुका है । परन्तु वह अनजाने में ही शुभा के बारे में, उसकी सुन्दरता के बारे में बातें करता रहता था । वह अक्सर चाहता था कि किसी भी तरह उसकी मुलाकात शुभा से हो जाये । जागृती की आवस्था में तो वह उसी के बारे में सोचता रहता है इसके साथ ही सोते हुऐ भी स्वप्न में भी उसी को देखता है ।

रैक्व, शुभा को उदात्त भावना से देखता है । उसका गुरू के रूप में सम्मान देता है । हर किसी से अपने गुरु के बारे में ही चर्चा करता है । उसकी उदात्त भावना के उदाहरण उपन्यास में कई मिल जाते है - " देखिए, मेरे गुरू का नाम "शुभा" है । यह पद - मात्र है । शुभा पदार्थ बिल्कुल भिन्न है । इस पदार्थ जैसी सुन्दर चीज मैंने आज तक नहीं देखी । इस समय वह पदार्थ मेरे सामने नहीं है पर पद आज भी मेरे साथ है । जब मैं कहता हूँ "शुभा" तो वह पदार्थ अनायास मेरे मन में आ जाता है । आपके मन में नहीं आयेगा, क्योंकि आप उसे नहीं जानते । जानते है, वह पदार्थ मेरे मन में क्यों आ जाता है ? प्रत्यय के बल से । अगर किसी दिन मैं उसे फिर देखूँ तो पद-

---

65· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ· 357-358

चान लूंगा कि वह शुभा है । आप नहीं पहचानेंगे, क्योंकि पद और पदार्थ को जोड़ने वाले पदार्थ प्रत्यय मेरे पास है आपके पास नहीं है । पर वायु से निश्चय ही भिन्न है । वायु होता तो आपको भी पहचान देता । मगर आप इस बात को कैसे समझेंगे ? आपको शुभा जैसे गुरु तो मिली नहीं । आप मुझसे ज्ञान में अधिक है । भाग्य में हीन । ठीक कह रहा हूं न । " 66

मनोरचना में इसे उदात्तीकरण (sublimation) कहते है । इसमें जब व्यक्ति की इच्छापूर्ति किसी कारण नहीं हो पाती है तो वह मजबूर हो कर कोई अच्छे कार्य करने की ओर मुड़ जाता है । जैसे रैक्व शुभा को पाना चाहता था न मिलने के कारण दलित जनों की सेवा करने लगता है ।

ऋतुका के द्वारा भी रैक्व में उदात्तीकरण की उत्पन्नता का पता चलता है :- " ठीक कहती हो दीदी रानी, वह देवता से भी बढ़कर है । कौन दीन - दुखियों के बारे में सोचता है ? जब गांववालों के दु:ख की बात सुनी तो माताजी के साथ गांव-गांव घूमें । " 67

जाबाला रैक्व की ओर पूर्ण रूप से आकर्षित हो चुकी थी । रैक्व से बिछुड़ने के कारण वह अक्सर उदास रहती थी और दिन-प्रतिदिन कमजोर भी हो रही थी । यह सब देख कर उसके मन को बहलाने के लिए नाटक का अयोजन किया जाता है । उस नाटक के नायक और कथा, शुभा के रैक्व तथा उन दोनों के साथ बीते दिनों से मिलता - जुलता था । जिसके कारण शुभा रो पड़ती है । " कृषिकुमार की बड़ी-बड़ी निर्मल आँखों में आपार विस्मय और श्रद्धा का भाव था । अरुन्धती उसके भोले-पन पर हँसने का उपयुक्त अवसर मान रही थी । इसी बीच उसने जाबाला को देखा आँखों से अविरल अश्रुधार बह रही थी, वह दबाने का प्रयत्न करके भी अपना आर्त्त क्रन्दन दबा नहीं पा रही थी । अरुन्धती ने चिन्तित स्वर में पूछा , " दीदी क्या हो गया तुम्हें ! दीदी दीदी

66• हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ• 371•
67• - वही - पृ• 414•

जाबाला और भी फूट पड़ी । अरून्धती हैरान । यह क्या हुआ, जहाँ कौण्कुमार की मुर्खता पर हँसना चाहिए वहाँ दीदी रोने लगी । वह कुछ नहीं समझ पायी ।"[68]

इस दृश्य के आधार पर दो तरह की मनोरचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है । एक तो साहचर्य (association) और दूसरा तादात्मय (identification) परन्तु दोनों में से सहचर्य ही मुख्य है क्योंकि यहाँ शुभा नाटक के नायक को देखकर रैक्व का याद करती है । और नाटक की कथा उनके साथ बीते दिनों से मिलती-जुलती थी इसलिए नाटक को देखकर सहचर्य करती है । अर्थात् बीते दिनों की याद कर रही है । जहाँ की तादात्मय में व्यक्ति किसी व्यक्ति से अपने व्यक्तित्व को मिलाकर देखता है । दूसरे शब्दों में नायक के दुख-सुख उस समय के लिए दर्शक के हो जाते है ।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पात्रों द्वारा उपयोग में लायी गयी रक्षायुक्तियों को देखकर कोई आश्चर्य नहीं होता है । क्योंकि प्रतिदिन हर एक व्यक्ति कोई-न-कोई रक्षायुक्ति का सहारा लेता ही है । यहाँ एक जरूरी बात कहनी है कि द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों में इतने सुन्दर ढ़ंग से किया है कि कहा जा सकता है कि उन्होंने समाज के साथ व्यक्ति के व्यावहार को भी बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से देखा है । यह उनकी लेखन क्रिया की महानता है ।

3.3.5 स्वप्न सिद्वान्तों के आधार पर उपन्यासों का विश्लेषण :-

स्वप्न प्राय: दैनिक जीवन से ही सम्बन्धित होते है । ये दो तरह के है - दुख पहुँचानेवाले और सुख पहुँचानेवाले । कुछ लोगों का मानना है कि स्वप्न निरर्थक होते है । परन्तु यह बात सत्य नहीं है ।

---

68. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ. 408.

स्वप्न पर कई लोगों ने विचार किया है और अलग-अलग मत भी दिये है । " ब्राउन (J. F. Brown, 1940) का विचार है कि स्वप्न वह विभ्रम है जिनका अनुभव हम सबको प्रतिक्षण होता है और जब जागर्त है तो उनका विन्रीतत स्वरूप हमें स्पष्ट हो जाता है । " 69

फ्रायड के अनुसार,"स्वप्न वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा अचेतन मन की इच्छाएँ चेतन मन में बदले हुए रूप में प्रवेश करती है । " 70

जेम्स ड्रेवर (James Drever, 1965) के अनुसार " स्वप्न विभ्रमात्मक अनुभवों की वह गाड़ी है जिसमें कुछ मात्रा में सांमजस्य स्वभाव पाया जाता है, लेकिन बहुधा स्वप्न अस्पष्ट होते है और यह या तो निद्रावस्था में होते है अथवा समान परिस्थितियों में होते है । " 71

स्वप्नों पर जो विचार कई विद्वानों ने अपने-आप,मन के अनुसार किया है । यह समान्य-सी बात है कि स्वप्न सभी लोग देखते है और बहुत कम लोग इसे महत्व देते है । मनोविश्लेषण क्षेत्र में स्वप्न का एक विशेष महत्व है । उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन करने के लिए पात्रों के स्वप्नों का भी अध्ययन करना अति आवश्यक है ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में स्वप्न दृश्यों और दिवस्वप्नों को देख सकते है । इनको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

1. पात्रों के द्वारा देखे गये स्वप्न ।
2. पात्रों के बीच देखे गये स्वप्न सम्बन्धी वार्तालाप ।

---

69. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान - डॉ॰प्रीती वर्मा - पृ॰ 250.

70. - वही -

71. - वही - पृ॰

3• पात्र के माध्यम से आचार्य द्विवेदी का स्वप्न सिद्धान्त पर विचार ।

विवेचन से पहले यहाँ द्विवेदी जी के उपन्यासों में प्राप्त स्वप्नों की एक तालिका प्रस्तुत करना समीचीन होगा । वह इस प्रकार बनती है :-

उपन्यास	पात्र	स्वप्न या दिवास्वप्न	पृष्ठ	अनुप्रयुक्त के लिए उपयुक्त सिद्धान्त
1• बाणभट्ट की आत्मकथा	पुजारी बाबा	स्वप्न (स्वप्न का वर्णन एक वृद्ध ब्राह्मण के द्वारा बाणभट्ट से)	49	फ्रायड
2• चारु चन्द्रलेख	राजा सातवाहन	स्वप्न	269	"
	रानी चन्द्रलेखा	"	288-289	"
	विधाधर	"	452	"
	राजा सातवाहन	"	481-482	"
3• पुनर्नवा	आर्यक	स्वप्न	109	"
	मृणालमंजरी	"	118	"
	सुमेर काका	स्वप्न संबंधी बातें	118	"
	मृणालमंजरी	स्वप्न संबंधी वर्णन	118	"

	पुनर्नवा	भाभी ﴾ धुतादेवी ﴿	स्वप्न सम्बन्धी संवाद	255	फ्रायड
4.	अनामदास का पोथा	जाबाला ﴾शुभा﴿	दिवास्वप्न	326-227	"
		रैक्व	स्वप्न	335	"
		"	स्वप्न के बारे में विचार	336	"
		"	स्वप्न से संबंधित	338-339	"
		"	स्वप्न ﴾देखता है रैक्व ﴿	339	"
		"	स्वप्न के बारे में सब से कहता है ।	340	"
		ऋतुका ﴾ उज़ुआ ﴿	स्वप्न का वर्णन रैक्व	397	"
			स्वप्न का वर्णन माता ऋतु	339	"

---

1. पात्रों द्वारा देखे गये स्वप्न :-

'चारु चन्द्रलेख' में राजा सातवाहन और 'पुनर्नवा' में आर्यक ये दोनों पात्र है जो स्वप्न देखते हुए पाये जाते है । किन्तु ये दोनों पात्र किसी दूसरे पात्र को अपने स्वप्नों के बारे में वर्णन करते हुए पाये नहीं जाते है ।

" चारुचन्द्रलेख " में राजा सातवाहन का स्वप्न कुछ इस प्रकार है - " मैंने स्वप्न देखा कि कोई स्थावेश तापस मुझे जगा रहा है । नींद खुली तो सामने सचमुच ही एक तपस्वी खड़े थे । ऐसा जान पड़ा कि उन्होंने मुझे पहचान लिया । बोले, " राजन देर हो रही है । निद्रा में समय न गँवाओं, सीधे पश्चिम की ओर घोड़ा दौड़ाओं । सीदी मौला नहीं मिलेगा, सीदी देवी मिलेगी ।" फिर हँसकर इसश्लेष का अर्थ समझाते हुए बोले, " सीदी से भेंट नहीं होगी परन्तु सिद्ध तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है । उठो, देर न करो । एकक्षण के विलम्ब से सारा काम नष्ट हो जायेगा । " 72

राजा सातवाहन सीदी मौला से मिलने के लिए अति शीघ्र से उस गाँव को पहुँचता है जहाँ वे रहते थे । परन्तु कुछ देर पहले ही वे दूसरे गाँव की ओर प्रस्थान कर चुके थे । इस कारण राजा बहुत उदास हो जाता है । और अधिक थके होने के कारण सो जाते है । स्वप्न में साधारणतः इच्छाओं की पूर्ति होती है और इसके अलावा भी कई बार स्वप्नों से यह भी पता चलता है कि आगे जीवन में क्या होगा या होने वाला है । जिस प्रकार राजा सातवाहन को स्वप्न में पश्चिम की ओर जाने का आदेश मिलता है और वरों का प्राप्ति होगी, इसका भी पता होता है ।

राजा सातवाहन एक और बार स्वप्न देखता है । उन को लगता है कि रंगभूमि में रानी की मृत्यु हो गई । इस पर वह बहुत दुखित होता है । तलवार निकाल कर फेंक देता है । वहीं बहुत देर तक संज्ञाशून्य पड़ा रहता है और स्वप्न देखता है । " मैं किसी ऊर्ध्वलोक की ओर जा रहा हूँ । दूर आकाश में रानी चन्द्रलेखा ऊपर की ओर उड़ती जा रही है, उसके कौसुम्भी वस्त्र हवा में फरफरा रहें है, उनकी आँखें नीचे की ओर विवश भाव से मुझे देख रहीं है । वे नीचे आने का प्रयत्न कर रहीं है, पर प्रबलतर वायु उन्हें ऊपर ठेले जा रही है । मैं सारी शक्ति लगा कर उन्हें पकड़ने का प्रयत्न कर रहा हूँ, । मै जितना ही ऊपर जाना चाहता हूँ धरती का आकर्षण उतना ही मुझे नीचे की ओर खींच रहा है । रानी नीचे आना चाहती है, आ नहीं पा रही है ।

---

72. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - 1, चारुचन्द्रलेख - पृ. 267.

मैं ऊपर उठना चाहता हूँ उठ नहीं पा रहा हूँ । रानी की कातर आँखों से आँसू झर रहे है, कह रही है, " आयास न करो महाराज " मुझे नीचे आने नहीं दिया जा रहा है, कोई बड़ी शक्ति दुर्बार वेग से खींच रही है । नहीं हो सकेगा मैं तुम्हारे चरणों में नहीं आ सकूँगी । मै चिल्लाकर कह रहा हूँ " रानी, रानी, देवी, मै तुम्हें नहीं छोड़ सकूँगी । चिन्तित न हो देवि ! मै अवश्य तुम्हें पकड़ सकूँगा । रानी कातर भाव से कर रही है " नहीं होगा महाराज ! कोई बड़ी भारी दैवी शक्ति मुझे ऊपर लिए जारही है । हाय महाराज, मै लौट नहीं सकती मै विवश हूँ महाराज ! रानी दूर-से-दूर चली जा रही है । मै लाचार हूँ, विवश हूँ कातर हूँ । हाय रानी, हाय देवी, चिड़िया भी गयी पिंजरा भी गयी । रानी की करूण आँखे और भी धूसर हो उठी है । मैं और भी बल लगाकर ऊपर उठाना चाहता हूँ और भी । रानी दूर से दूर चली जा रही है । मैं गिर पड़ता हूँ, बेहोश हो जाता हूँ ।

फिर मुझे स्वप्न में दिखायी पड़ा । रानी नीचे आ गयी है । कह रही है । बड़ा अनर्थ हो गया महाराज ! मुझे तुम्हारी चरणों की सेवा का अवसर नहीं मिल रहा है । देखो ये मुझे फिर खींचे लिये जा रहे है । मैं सारी शक्ति लगा-कर उठना चाहती हूँ उठ नहीं पा रहा हूँ । देवि मुझे छोड़ो मत । मैं सेवा लेना नहीं चाहता, देना चाहता हूँ, तुम्हें देखता रहूँ, यही मेरे लिए सब कुछ है । रानी को कोई खींच लिये जा रहा है । वे चिल्लाकर कह रही है, देखो महाराज, ये मुझे नहीं छोड़ रहे । रानी की कातर आँखों को देखकर मेरा सारा अस्तित्व उद्वेग हो उठता है । कौन तुम्हें ले जा सकता है । देवि देखो यह मैं आया । कोई मुझे जोर से दबा देता है । रानी ऊपर जा रही है मेरा मन हार जाता है । हाय देवि रूको मैं आया । मैं उठने का प्रयास करता हूँ, फिर दबा दिया--रानी करूण नेत्रों से ताकती हुई ऊपर चली जा रही है, ऊपर और भी ऊपर मैं चाहती हूँ, देवि मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा उठने का प्रयत्न करता हूँ । रानी दूर से कह रही है, नही होगा महाराज प्रयास मत करों, कोई दुर्बार शक्ति मुझे खींच लिये जा रही है । मैं रानी के विवश-करूण मुख को देखकर रो पड़ता हूँ । चिल्ला कर कहता हूँ । रानी; रानी, रानी ! हाय, रानी दूर, और भी दूर ! मैं और

भी बल लगाकर उठता हूँ और भी । दबाव और भी तेजी से अनुभूत हो रहा है । मैं व्याकुल हूँ और जोर लगता हूँ । रानी, रानी, रानी । " 73

राजा सातवाहन इस तरह का स्वप्न इसलिए देखता है कि वह अपनी पत्नी चन्द्रलेखा को सिद्धियों के चक्कर से छुड़वाना चाहता था । परन्तु उसके प्रयास भी एक सब बेकार हो रहे थे । उसे हमेशा डर लगा रहता था कि उसके हाथ से चन्द्रलेखा निकलती जा रही जिस तरह हिरण के बच्चे उसके हाथों से निकल गया था । इस के बारे में सोचने मात्र से ही उसे अत्यंत दुख हो रहा था ।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि राजा का इस तरह का स्वप्न देखना स्वभाविक था । क्योंकि उसकी इच्छाएँ जो दमित थी कि उसकी रानी उसके साथ सुखी से रहें, जो सीधे रानी से वह नहीं पा रहा था, वह स्वप्न के माध्यम से प्रकट हुआ है ।

" पुनर्नवा " में आर्यक जो शिला पर लेटे रहता है । स्वप्न कुछ इस प्रकार देखता है - " मृणाल, उस का सिर अपनी गोद में लेकर बैठी है । वह रही है, " लोक मिथ्या है । कर्तव्य का निर्णय बाहर देखकर नहीं किया जाता । तुम्हारा निर्णायक तुम्हारे भीतर है जो भी तुम्हारे पास है उसी से उसकी पूजा करो । कमजोरियाँ जब उसे समर्पित कर दी जाती है । तो शक्ति बन जाती है । सदा बाहर ही न देखो, कुछ भीतर भी देखो । मेरे लहुरावीर, तुम्हें अन्याय से लोहा लेना है । कौन क्या कहता है, कहने दो । तुम्हारा अन्तर्यामी क्या कहता है, वही मुख्य वस्तु है । घबराने की क्या बात है । मैं मृणाल हूँ, सिंहवाहिनी के उपासिका, महिषमर्दिनी की अभिलाषिणी । भूल गये मेरे प्यारे, मेरे लहुरावीर, मेरे मान ससिंह । अभी महिष - मर्दन का काम बाकी है । " 74

---

73. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, चारुचन्द्रलेख पृ. 481-482
74. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 109.

आर्यक इस तरह का स्वप्न इसीलिए देखता है कि उसके मन में पहले से ही अपराध - भावना अचेतन स्तर में विराजमान है । एक तो इसीलिए भी कि मृणालमंजरी सभी प्रकार से योग्य होने पर भी गोपाल आर्यक अपने कार्य वश उसको छोड़ कर चला जाता है । इसके अलावा चन्द्रा नाम की युवती भी इसके पीछे लगी थी । परन्तु आर्यक अपने पत्नी से अलग रहते हुए भी उसके बारे में सोचता रहता है जो स्वाभाविक है । इसीलिए वह स्वप्न में मृणालमंजरी को अपने काफी करीब पाता है और उसमें समाज का भय दूर करने में प्रयत्नशील और कर्तव्य-पालन का उपदेश देती पायी जाती है ।

स्वप्न संबंधी सिद्धान्तों के अनुसार स्वप्न में अधिकांशतः दमित इच्छाओं को उभार मिलता है । आर्यक के स्वप्न के सन्दर्भ में यह ठीक ही लगता है । जैसे आर्यक की इच्छा थी कि वह मृणालमंजरी से मिले परन्तु उसको कई कारण वश अपने-आप को रोकना पड़ रहा था । इसीलिए इच्छा - पूर्ति स्वप्न के माध्यम से ही होती है ।

2· पात्रों के बीच स्वप्न से सम्बन्धित सम्वाद :-

बाणभट्ट की आत्मकथा में किसी भी पात्र को सीधे स्वप्न या दिवास्वप्न देखते हुए पाया नहीं जाता है । पुजारी बाबा के बारे में बताते हुए वृद्ध व्यक्ति बाण-भट्ट से कहते है कि - " वे कोई देखने में सुन्दर तो नहीं लगते है पर है बहुत शोकीन जहाँ कि बूढ़े है फिर भी कानों में ओण्ड्र - पुष्प को लगाते है । वे तन्त्र-मन्त्र के ज्ञान से भी परिचित थे । जो पोथी लिखा है उसको देखकर उनकी विश्वास है कि सुन्दरियाँ उनके साथ ही रहेगी । रात को आँख न दिखायी पड़ने पर भी अप्सराओं के आगमन की आशा रखते है । इसीलिए रात भर प्रदीप जलाये रखते है । उनके निद्रा और स्वप्न सम्बन्धी बाते कुछ इस प्रकार है - " यद्यपि निद्रा में कुम्भकरण के प्रतिद्वन्द्वी है, पर स्वप्न में नूपुर क्वणन निरन्तर सुना करते है । " 75

75· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ· 47·

वृद्ध ब्राह्मण के द्वारा पुजारी बाबा के वर्णन को पढ़ने से ऐसा लगता है कि वे काफी संसारिक इच्छाओं में मन लगते थे परन्तु साधु होने के कारण वे चाह कर भी अपनी इच्छाओं को पूर्ती नहीं कर पा रहा था । जिसके कारण देखा जाता है कि वे अपने स्वप्नों में भी पायल की ध्वनि सुना करते थे । फ्रायड् स्वप्न सिद्धान्त के अनुसार पुजारी बाबा की इच्छापूर्ती करने का साधन स्वप्न है ।

'चारु चन्द्रलेख' में रानी चन्द्रलेखा अपने पिछले दिनों के बारे में बताती हुई एक स्वप्न के बारे में भी जिक्र करती है - " सोथे - सोथे स्वप्न में देखा कि मै एक छोटी-सी चिड़िया हूँ जो एक सोने के पिंजरे में बन्द है । न जाने कितने लोग पिंजरा तोड़कर मुझे ले जाने आये । परन्तु पिंजरा टूटा नहीं अन्त में एक घुड़सवार आया और पिंजरा ही उठाकर चलता बना । मैंने घुड़सवार से कहा कि, तुम पिंजरा क्यों ले जाते हो ? इसे तोड़कर तुम मुझे निकालो, मै तुम्हारे साथ चलूँगी । परन्तु घुड़सवार ने कहा कि मुझे पिंजरा भी चाहिए और चिड़िया भी चाहिए । मैंने कहा, तुम पिंजरे के सोने को अपने काम में लाओं और मुझे स्वतन्त्र विचरण करने के लिए छोड़ दो । जब चाहेंगे मै तुम्हारे पास आ जाऊँगी । घुड़सवार ने कहा, " मै तुम्हें पहचानता हूँ, तुम और चिड़ियों से भिन्न हो तुम पिंजरा छोड़ कर नही उड़ सकती । उड़ोगी तो पिंजरा भी साथ-साथ उड़ेगा । मै तुम्हें उड़ने दे सकता हूँ लेकिन तुम्हें मै पिंजरे से मुक्त नहीं कर सकता । उड़कर देखों कि पिंजरा तुम्हारे साथ-साथ उड़ रहा है कि नहीं । मैंने उड़ने का प्रयत्न किया और सचमुच पिंजरा साथ-साथ उड़ने लगा । मैंने कहा, " घुड़सवार तुम क्या पिंजरे से मुझे नहीं छुड़ा सकते ? उसने कहा, मेरे वश की बात नहीं । पिंजरा टूटने लायक है ही नहीं । मैंने कहा, " घुड़सवार दया करो, मै भी तुम्हारी, पिंजरा भी तुम्हारा । घुड़सवार ने ताली बजाकर कहा, बेकार बात है । मै तुम्हारा भी, और पिंजारे का भी । तुम उड़ती रहोगी । जितना जितना चाहोगी उड़ोगी पिंजरा भी साथ-साथ उड़ेगी । परन्तु तुम्हें मै ले जरूर जाऊँगा । एकाएक मेरी आँखे खुल गयी । मै चकित भाव से सोचने लगी, इस स्वप्न का क्या अर्थ है ? इतना कहकर रानी ने मेरी ओर ध्यान से देखा । बोली " विश्वास करोगे, महाराज । वह घुड़सवार बिलकुल तुम्हारे जैसा था । " 76

---

76. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - 1, चारुचन्द्रलेख - पृ. 288 - 289.

यह स्वप्न भी राजा सातवाहन के द्वारा देखे स्वप्न की तरह ही विचित्र है । राजा महाराज करता है कि उन दोनों का जन्म जन्मान्तर का बंधन है । चन्द्रलेखा इस तरह का स्वप्न इसलिए देखती है कि किसी तपस्वी के द्वारा भविष्यवाणी हुई थी कि वह रानी बनेगी जब कि वह एक गरीब किसान की बेटी थी । इस स्वप्न में पिंजरा और चिडिया प्रतीकात्मक है । सोने का पिंजरा राज महल का प्रतीक है । तो चिड़िया चन्द्रलेखा की । चन्द्रलेखा की तरह चक्र चंचल, रामबाण के समान अबोध । फिर एकाकार अभिभूत होती है । सैकड़ो मुस्टंडे जवान इसको रौंद डालते है, मैना पकड़ ली जाती है । मेरे रक्त में प्रभंजन का आलोड़न हुआ । मैं एक ही झटके में उठकर बैठ गया । हाथ तलवार की मूठ पर था । " 77

इस स्वप्न को विधाधर इसलिए देखता है कि मैनसिंह एक किशोरी होती हुई एक बड़ी सेना का सामना नहीं कर सक्ती थी । वह बहुदुरी से लड़ने पर भी कोई फायद नहीं होगा । वह दुशमनो के हाथो पकड़ ली जायेगी । इसका भी पता था । इसलिए यह स्वप्न बहुत स्वाभाविक सा लगता है । इसका कारण यह है कि व्यक्ति कुछ हद तक अन्दाजा लगा सकता है कि किसकी जीत या हार कर हो सक्ती है और विधाधर को पता रानी तो बनना पंसद करती है परन्तु किसी भी तरह की सीमा में बंधना नहीं चाहती है । इसलिए वह पिंजडे से बाहर आ जाना चाहती है । परन्तु घुड़सवार कहता है कि तुम स्वतन्त्रता से जहाँ चाहो उड़ सक्ती हो पर पिजड़ा भी तेरे साथ होगा । अर्थात् तुम स्वतन्त्र होती हुई भी राज महल के नियमों के बन्धन में बंधी रहोगी ।

चारु चन्द्रलेख का तीसरा पात्र विधाधर भी स्वप्न देखता है - " मैने (विधाधर) स्वप्न में देखा-मैनसिंह अर्थात् मैना भयंकर भुग-सेवा में अकेली घुस गयी है । सैकड़ो दैत्य समान घुण्डक और तुर्क सैनिक उस पर टूट पड़े है । मैना लड़ रही है - महादुर्गा जिस प्रकार महिषासुर वाहिनी में निर्भय अम्लानभाव से युद्ध करतीथी, उसी प्रकार । उसकी तलवार बड़ी तेजी से चल रही है । कालसर्प के फण की भाँति अनवरत विद्यु लेखा था कि मैना की हार जरूर होगी इसलिए ऐसा स्वप्न देखते है ।

---

77. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - चारु चन्द्रलेखा पृ. 452.

" पुनर्नवा " में मृणाल मंजरी स्वप्न में आर्यक को देखती है और सुमेर काका को पूरे स्वप्न वृत्तांत बताती है - " मैंने देखा है कि वे किसी अन्धकार भरी गुफा में रास्ता खो जाने के कारण व्याकुल भाव से इधर-उधर घूम रहे है और मेरा नाम ले लेकर चिल्ला रहे है मैना किधर हो ? दीपक ले आओ, मुझे रास्तानहीं दिखायी दे रहा है । अच्छा काका, सपना क्या सच होता है । " 78

मृणालमंजरी आर्यक के चले जाने के कारण अक्सर उदास रहती थी और हमेशा इस चिन्ता में लगी रहती थी कि आर्यक घर से चला तो गया परन्तु वह कैसा होगा । उसको कोई तकलिफ तो नहीं हो रही है जो स्वभाविक सा लगता है । स्वप्न सिद्धान्त के अनुसार अचेतन में दबी हुई इच्छाएँ ही स्वप्न का रूप लेकर बाहर आती है । मृणा-मंजरी इस स्वप्न के द्वारा अपनी इच्छा को पूरा कर रही है ।

" अनामदास का पोथा " में स्वप्न और दिवास्वप्न दोनों मिलते है । इस उपन्यास का नायक रैक्व को बहुत भोला और संसारीक ज्ञान नहीं रखता था जिसकी मुलाकात शुभा (राजकुमारी) से होती है । अनजाने में ही उसकी ओर वह आकर्षित हो जाता है । परन्तु उससे बिछुड़ने के बाद वह अक्सर उसी के बारे में सोचा और स्वप्न में उसका दर्शन करता था । उसे गुरू और अति-सुन्दरी के रूप में मनाता था । इसी कारण वह सभी से उसकी ही चर्चा करता फिरता और सबको तुच्छ मानता था - जैसे आचार्य से वह कहता है - " कल बूरा मान गये आचार्य ! मै अल्पज्ञ हूँ आप बहुत जानते है । अल्पज्ञ की बात का बूरा नहीं माना जाता । कल मैंने स्वप्न में अपने गुरु को देखा । गुरू महाराज शुभा वे तो दिव्यलोक निवासिनी है । स्वप्न में आ गयी । आचार्य क्या बताऊँ कि उनका रूप कैसा सुन्दर है । उनके मुख पर हमारे जैसे रूखे बाल नही है, एकदम चिकना, फूल के समान खिला हुआ । आँखें एकदम मृग की आँखों जैसी है - बड़ी-बड़ी, काली-काली, अत्यन्त मोहन । केश हमारे - तुम्हारे जैसे नहीं है, एकदम मुलायम, काले, लहरदार । समझे । " 79

78· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - 2, पुनर्नवा - पृ· 118·

79· " " अनामदास का पोथा - पृ· 334·

रैक्व आचार्य को सम्मान नहीं देता है । जो बाद में उसको महसूस होता है जो उसके अनुसार शुभा के स्वप्न में बतलाने के कारण पता चला । परन्तु यह गलती उसके अचेतन स्वर पर निरन्तर कार्य कर रही थी जो स्वप्न के माध्यम से उभर कर आती है ।

रैक्व एक और बार स्वप्न के बारे में आचार्य से कहता है - " अच्छा आचार्य विपन्न व्यक्ति की सेवा धर्म है न ? कैसे जानेंगे आप " कल स्वप्न में मैंने शुभा से पूछा था कि ये लोग जो मेरे पास रोगमुक्त होने की आशा से आते है, उनकी सेवा धर्म है या नहीं ? उन्होंने हँसकर कहा है । शुभा जब हँसती है तो लगता है फूल झर रहे है । " 80

रैक्व बार-बार शुभा से सम्बन्धित स्वप्न के बारे में ही आचार्य को बताता है । इसका कारण यह है कि रैक्व शुभा से बहुत अधिक लगाव रखता है । इतना ही नहीं वह समझता है कि और कोई ज्ञानी है तो वह केवल शुभा ही । अर्थात् वह सबसे अधिक महत्व उसीको देता है । और उसकी सुन्दरता पर भी मोहित हो गया था जिसके कारण वह सुन्दरता का भी वर्णन हर बार करता है ।

रैक्व जागृत अवस्था में भी स्वप्न के बारे में सोचा करता है । जैसे - " स्वप्न में शुभा कैसे खिंची आयी, वह तो जड़ पदार्थ नहीं है । स्वप्न कौन देखता है ? आचार्य कहते है कि मन नामक कोई पदार्थ है । वह वायु से अधिक शक्तिशाली है । यह उनकी सुनी-सुनायी बात है, परीक्षित सत्य नहीं है, पर जिससें सुना होगा, वह कदाचित परीक्षा कर चुका हो । स्वप्न में क्या मन कार्यरत करता है ? प्राण वायु और मन का क्या सम्बन्ध है ? किससे पूछा जाये कौन बतायेगा ? शुभा बता सकती थी पर वह मिलेगी कहाँ ? क्या मन की शक्ति से उसे प्रत्यक्ष खींचा जा सकता है ? स्वप्न में जो बिना बुलाये ही आ गयी, वह क्या प्रयत्न करने पर भी जागृत अवस्था में नहीं मिल सकती है ? " 81

80· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - 2, अनामदास का पोथा - पृ· 336

81· - वही - पृ· 337·

रैक्व शुभा से मिलने के लिए बैचेन था किन्तु उसके चाहने पर भी वह मिल नही पा रहा था जिसके कारण वह सोच में पड़ जाता है कि असल में यह स्वप्न क्या है। स्वप्न में तो शुभा आती है परन्तु जागृत अवस्था में यह क्यों नहीं हो सकता है। इसके बारे में सोचते हुऐ उसकी व्याकुलता बढ़ गयी और थोड़ी देर में ही सो गया और स्वप्न देखने लगा - " स्वप्न में शुभा दिखायी पड़ी। चिन्ता कातर मुख की शोभा कुछ और ही थी। उन्हें शुभा के अद्भुत वचन सुनायी दिये ऋषिकुमार तुम्हारी पीठ में बड़ी बेदना है। आओ तुम्हारी पीठ सहला दूं और सचमुच ही शुभा ने उनकी पीठ पर हाथ फेर दिया। कितना शीतल स्पर्श था। सारी व्यथा जाती रही। ऋषिकुमार को अपूर्व तृप्ति मिल रही थी।" 82

रैक्व के अचेतन स्वर में यह इच्छा दबी हुई थी कि शुभा से उसकी भेंट हो। जिससे वह अपने कष्टों को कह सुनाये और उससे परिहार के मार्ग पूछें। यह तो सम्भव नहीं था इसलिए यह इच्छा स्वप्न के माध्यम से पूरा करता है।

आगे जब रैक्व की मुलकात पहली बार माता ऋतुम्भारा से होती है तो उन्हें भी शुभा के बारे में बताता है - " देखी है माँ, शुभा को देखा है, बहुत सुन्दर है शुभा। बहुत मीठा बोलती है बहुत बड़ी तत्वज्ञानी है। पिछली रात ही तो उसे स्वप्न में देखा है।" 83

सामान्यत: देखा जाता है कि व्यक्ति जिस चीज को या व्यक्ति को अधिक महत्त्व देता है उसी के बारे में चर्चा करना पसंद करता है। जैसे रैक्व को शुभा से इतना अधिक लगाव था कि वह बिना उसके ज्ञान के ही सबसे शुभा के सुन्दरता के बारे में और स्वप्न में उससे मिलने की बात करता फिरता है।

---

82. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा, पृ. 339

83. - वही - पृ. 340.

रैक्व के अलावा दीदी अर्थात् ऋतुका भी अपने पति के बाद स्वप्न देखती है । ऋतुका रैक्व के पास स्वप्न का वर्णन करती है - " इस बच्चे का पिता पुकार रहा है । यहीं फिर आ गयी । स्वप्न में कहा है, इस गाड़ी के पास दीप जलाओं, मैं अन्धकार में भटक रहा हूँ । सो दीप जला के आ रही हूँ । " 84

दीदी ऋतुका का पति तूफान में फँस कर गाडी ले जाते समय मर जाता है । जिसके कारण उसके मन की शान्ति खो जाती है । यह उसके मन की बात थी कि अगर वह दीप गाड़ी के पास जलाया जाये तो उसके पति को मनःशान्ति मिलेगी और यही स्वप्न में देखती है जैसे कि उसका पति ही दीप जलाने को कह रहा हो । दूसरे शब्दों में उसके अचेतन की बात स्वप्न का रूप लेकर आयी है ।

" अनामदास का पोथा " में जाबाला को दिवास्वप्न देखते हुए पाया जाता जैसे - " मगर जाबाला स्वंय कुछ हलचल महसूस कर रही है । छाती में कहीं बुरी तरह हलचल है । यह भी क्या वायु का ही प्रताप है । पहले उसे कुतूहल हुआ था अब उससे अलग कोई भाव है । भोलेराम कहते हैं कि उनके बाल रूक्षा है । जटिल है और स्वर्गीय प्राणी के मुलायम है । हाय रे भोला तू तो जानता ही नहीं कि केशों को मुलायम बनाने के लिए कितनी दासियाँ लगी रहती है, कितना तेल उबटन खर्च होता है, कहीं तेरे बालों की भी ऐसी ही सेवा हुई होती तो क्या कम सुन्दर या कमनीय होते । जाबाला के मन में एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी अनुभूत हुई । अगर उसे अवसर मिलता तो वह उसकी सेवा करती कि तीन दिनों में ही उसका रूप निखर आता । एक सप्ताह भी अगर वह उसे धौरी गाय का दुध पिला सकती तो उसका शरीर तप्त काँचन की भाँति लटक उठता । नाई बुलाकर उसके सुन्दर मुख को चांद की तरह चमका देती । तीन दिन के तेल - उबटन से वह दिव्य पुरूष की भाँति खिल उठता । मगर है हठी । नाई से ही झगड़ पड़ेगा । तेल-उबटन लगानेवालों से तो लड़ ही पड़ेगा । सब तो वायु का खेल है, तुम कौन होते हो दखल देनेवाले मगर जब वह गुस्सा होगा तो उसका भोला मुंह और भी कमनीय हो जायेगा । जाबाला उसे आँखों से ही डाँट देगी नहीं, अधम मत करो, चुपचाप जो कहती हूँ

---

84. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ. 347.

करा लो । मान जायेगा या नहीं ? मान जायेगा । कहेगा, इस सुन्दर मुख की वाणी के कारण मै बाध्य हो रहा हूँ । मजा आ जायेगा । भोलेराम को पता ही नहीं कि सुन्दर मुख की वाणी कितनी गहराई में चोट करती है । " 85

जाबाला दिवास्वप्न इसलिएदेखती है कि वह रैक्व की ओर अकर्षित हो चुकी थी । और वह चाहती थी कि इसकी मुलाकता रैक्व से फिर हो परन्तु प्रश्न उठता है कैसे ? इसलिए अपनी मनस्तृप्ति के लिए वह बीते दिनों की याद कर रही है जिस पर वह खुद महसूस करती है कि वह यह क्या दिवास्वप्न देख रही है ।

दिवास्वप्न में व्यक्ति कल्पना करता है कि आगे अगर ऐसा हो तो । परन्तु वह खुद भी जानता है कि वह जो कुछ सोच रहा है वह सब होने वाला नहीं है फिर भी एक कल्पना मात्र है ।

पात्रों के माध्यम से आचार्य द्विवेदी का स्वप्न संबन्धी विचार :-

साहित्यकार अक्सर अपने विचारों को अपनी रचना के पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है । जैसे आचार्य द्विवेदी का स्वप्न सिद्धान्त के सन्दर्भ में यह मानते थे कि यह सत्य है कि दबी हुई इच्छा ही स्वप्न का रूप लेकर आती है । परन्तु आगे उनका यह भी कहना था कि स्वप्न कोई मिथ्या भी नहीं होता है । इसी तरह के विचार " पुनर्नवा " " सुमेर काका " और भाभी (धूतदेवी - चारूदत्त की पत्नी) के द्वारा व्यक्त, किया गया है ।

" सुमेर काका " के द्वारा स्वप्न संबंन्धी बातें कुछ इस प्रकार करायी गयी है - " बिल्कुल नहीं । तेरे बाप ने मुझे एक दिन बहुत सी बातें समझानी चाही थी । वह मुझे बताना चाहते थे कि स्वप्न से कुछ-न-कुछ जाना जा सकता है । उनका तो विश्-वास यह था कि स्वप्न में मनुष्य जो कुछ देखता है वह किसी-न-किसी वास्तविक परिस्थिति

---

85. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा पृ. 327.

का ही रूप होता है । परन्तु उनकी बात मेरी समझ में कभी नहीं आयी । बहुत से लोग जागते में भी सपना देखते है । वे काल्पनिक जगत् का निर्माण करके अपने - आपको भुलावा देते रहते है । यह भी एक प्रकार का सपना ही है । मैं भी किसी समय आर्यक के बारे में बडे-बड़े सपने देखा करता था परन्तु सब झुठ है बिटिया । आगे का सपना सोये के सपने से भी कही अधिक झूठ है । " 86

सुमेर काका की बातों को पढ़ कर ऐसा लगता है कि आचार्य द्विवेदी को पाश्चात्य स्वप्न सिद्धान्त का ज्ञान था । फ्रायड का भी यह मानना था कि अचेतन में दबी इच्छा ही स्वप्न के रूप आती है और दिवास्वप्न से संबन्धित बातें भी ठीक मनोविश्लेषण के दिवास्वप्न से संबन्धित बातों से मिलती-जुलती हैं । अर्थात् दिवा - स्वप्न केवल काल्पनिक होता है उसमें यथार्थ की कमी होती है ।

आचार्य द्विवेदी के स्वप्न सिद्धान्त पर विचार, उपन्यास में सुमेर काका के माध्यम से तो लेखक ने व्यक्त किया ही है । इसके साथ ही भाभी (धूतदेवी) चारु- दत्त की पत्नी ने भी इस सम्बन्ध में कुछ कहा है - " तुम स्वप्न में विश्वास करते हो ? नहीं करते ? सब स्वप्न विश्वास करने योग्य होते भी नहीं अधिकतर स्वप्नों में मनुष्य अपनी ही दबायी वासनाओं की काल्पनिक तृप्ति पाता रहता है । वे मायालोक में हमारी अतृप्त आकांक्षाओं को साकार रूप देते है । पर सच पूछे तो वे ही क्षणिक माया- लोक नहीं है । यह सारा संसार ही क्षणिक मायालोक है । यह भी स्वप्न ही । इस पर विश्वास करना और स्वप्न पर विश्वास न करना, दोनों निरर्थक है । विश्वास करों तो दोनों पर करों नहीं तो किसी पर न करो । जैसे इस दुनिया में बहुत कुछ झुठा भ्रम है और बहुत कुछ सत्य प्रतीति है, वैसे ही स्वप्न में भी होता है । " 87

इन पंक्तियों को पढ़ कर ऐसा लगता है कि भाभी (धूतादेवी) के माध्यम से लेखक अपना विचार व्यक्त कर रहा है । स्वप्न के मनोविश्लेषण सम्बन्धी बातों से यह

86· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा - पृ· 118·
87· - वही - पृ· 255·

काफी मिलता-जुलता है ।

3.3.6 आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व :-

फ्रायड के अनुसार - "जीवन अन्तद्वन्द्वों की श्रृंखला से मिलकर बना है ।"[88] यही कारण है कि फ्रायड ने सभी शक्तियों का आधारभूत स्त्रोत अन्तर्द्वन्द्व को ही माना है । संघर्ष के कारण ही व्यक्ति का विकास होता है ।

मनोविश्लेषकों ने अन्तर्द्वन्द्व की विवेचना इस प्रकार की है - "अन्तर्द्वन्द्व अवस्था है जब दो इच्छाएँ इतने विरोधी होती है कि एक दूसरे की द्वन्द्व एक ऐसी अवस्था है - जिसमें दो या दो से अधिक विरोधी प्रेरणाएँ उत्पन्न हो जाती है जिनकी एक साथ तृप्ति होना सम्भव नहीं है ।"[89]

अन्तर्द्वन्द्व तो समान्य तौर से सभी व्यक्तियों में पाया जाता है । आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में भी कुछ पात्र है जिनमें अन्तर्द्वन्द्व देखा जा सकता है । निम्न तालिका में उपन्यास के नाम और पात्र के नाम दिये गये जो विश्लेषण के लिए उपयुक्त हैं।

अन्तद्वन्द्व

उपन्यास	पात्र	अन्तर्द्वन्द्व	पृष्ठ
चारु चन्द्रलेख	राजा सातवाहन	अभिमम-अभिमम	328
	"	"	355
	रानी चन्द्रलेखा	"	414
पुनर्नवा -	मंजुला	अभिमम - अनुनाद	23

88. असामान्य मनोविज्ञान के मूल आधार - लाभसिंह पृ. 71.
89. - वही - पृ. 72.

चारु चन्द्रलेख में राजा सातवाहन में अभिगम – अभिगम अन्तर्द्वन्द्व के एक से अधिक उदाहरण मिलते है । राजा सातवाहन अपनी रानी के सौन्दर्य – सुधा का पान करने में व्यस्त है । परन्तु अचानक चिन्तित हो जाते है । इस पर रानी उनसे चिन्ता का कारण पूछती है और वे कुछ इस प्रकार जवाब देता है – " क्या सोच रहा हूँ ? कैसे बताऊँ, विरोधी भावनाओं का शिकार बना रहा हूँ । विवेक बार बार बाहर जाने को प्रोत्साहित कर रहा है और आसक्ति उससे भी अधिक वेग से रानी की ओर खींच रही है । " 90

अभिगम-अभिगम अन्तर्द्वन्द्व में व्यक्ति दो इच्छाओं से संघर्ष करता है । वह यह समझ नहीं पाता कि किस को उसे चुनना चाहिए । जैसे – यहाँ राजा सातवाहन चाहता है कि अपनी रानी के साथ आराम से रहें और दूसरी ओर उसे अपने कर्तव्यों की याद आती है । वह दोनों को छोड़ना नहीं चाहता । इसलिए उसमें अन्तर्द्वन्द्व को देखा जा सकता है ।

अभिगम-अभिगम अन्तर्द्वन्द्व से सम्बन्धित और उदाहरण भी मिलते है । जैसे " मै एक विचित्र में था । क्या रानी को न रोककर मै पतिधर्म से च्युत नहीं हो रहा हूँ ! क्या रानी को जान-बुझकर मृग-मरीचिका की ओर जाने देना उचित हुआ ? परन्तु फिर मेरे मन में दूसरे प्रश्न भी उठते थे । सचमुच ही उस विचित्र साधना से क्या जरा-मृत्यु का पाश कर जायेगा ? कौन कह सकता है ? मै अपने चित्त की उलझनों को इस मार्ग में बाधक क्यों होने दूँ ? मैं व्यक्ति दृष्टि में अभिभूत हूँ, रानी समष्टि दृष्टि अपनाना चाहती है, मेरी ओर से ममता बोल रही है, उनकी ओर समता का बल है । विचित्र उलझन थी ? मेरा रोम-रोम कह रहा था कि रानी की साधना भ्रान्ति मात्र है । महाकाल का अकुण्ठ विलास रूकनेवाला नहीं है जरा और मृत्यु को अस्वीकार करने का प्रयत्न साहसमात्र है । परन्तु रानी से मैं यह सब नहीं कह सकता रानी ने निश्चित रूप से समझा कि मै उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे रहा हूँ । वे चली गयी मैं उदास और हतदर्प होकर कालक्षेप करने लगा । परन्तु इस प्रकार का अलस-विलास भी देर तक नहीं टिक सका । " 91

---

90. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग – 1, चारुचन्द्रलेख पृ. 328.
91. – वही – पृ. 355.

उक्त पंक्तियों से ऐसा लगता है कि राजा अपनी पत्नी को वापस कोटि-वेधी रस सिद्ध बनाने के लिए तैयार नहीं है परन्तु, उन्हें रोकने का भी मन कर रहा है क्योंकि वह जिस कार्य में लगी हुई है उससे संसारपरा - मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल जायेगा । वह असल में तय नहीं कर पा रहें है कि उनको क्या करना चाहिए । किन्तु लाचार हो कर चन्द्रलेख को विदा कर देते है ।

रानी चन्द्रलेखा में भी अभिगम-अभिगम अन्तर्द्वन्द्व को पाया जा सकता है । वह चाहती थी कि सिद्धियों की सहायता करना छोड़ कर वापस अपने घर जाये किन्तु फिर कोई आकर्षित चीज़ दिखाई देती थी जो उसे जाने से रोक लेती, यही सिलसिला चलता रहता था । जब चन्द्रलेखा की भेंट राजा सातवाहन से होती है तो कहती है कि " अमोघवज्रवाद की आज्ञा से ही मैं भगवती विष्णुप्रिया के यहाँ गयी थी । मुझे यहाँ उनके सम्पर्क में आने से निस्सन्देह शान्ति मिली है । मेरा मन अब भी दो नावों पर सवार है । मैंने जो कुछ प्रत्यक्ष देखा है उसे भूल नहीं पा रही हूँ, किन्तु भगवती विष्णु-प्रिया जिधर जाने का आदेश दे रही है उस ओर जा भी नहीं पा रही हूँ । " [92]

'पुनर्नवा' में मंजुला अभिगम - अनुनाद अन्तर्द्वन्द्व से परेशान देखी जा सकती है । मंजुला देवरात की ओर झुकती है परन्तु उसमें अहम भाव इतना अधिक था कि वह अपनी मन की बात कह नहीं पाती है । जैसे - " हाय, किस गहराई में उस असामान्य पुरूष के अन्तर देश में पीड़ा घर किये बैठी है ? ऊपर से वह गम्भीर बनी रही । पर उसका अन्तर द्रवित हो चुका था । राजा ने उससे प्रश्न किया " कहो मंजुला आर्य देवरात की कविता कैसी लगी ? " मंजुला ने कृत्रिम गर्व का भाव धारण किया । विलोक चटुक मुद्रा में " नासा मोरि नचाई दृग " बोली, " वासी है । " [93]

92· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 1, चारूचन्द्रलेख - पृ· 414 - 415·

93· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 2, पुनर्नवा पृ· 23·

मंजुला में अभिगम-अनुगाद अन्तर्द्वन्द्व इसलिए कि वह अपने आप को भूल कर देवरात की ओर जाना चाहती नहीं और देवरात को भी वह खोना नहीं चाहती है । देवरात को पाने के लिए अपने (मंजुला के) अहम् का त्याग जरूरी है वह कुछ समझ नहीं पा रही है इसलिए उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व को साफ देखा जा सकता है ।

अन्तर्द्वन्द्व सामान्य रूप से सभी मनुष्य में पाये जाते है । द्विवेदीजी ने सूक्ष्म विषय को भी इतने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है । ऐसा लगता है कि उन्हें अन्तर्द्वन्द्वों के प्रकारों का ज्ञान था ।

3.3.7 आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पात्रों के द्वारा प्राप्त लैंगिक विपर्यास एवं संदर्भ :-

मनोविज्ञानिक कोश के अनुसार विपर्यास की परिभाषा कुछ इस प्रकार है - " वास्तविक उद्देश्य अथवा लक्ष्य से परे किसी भी मूलप्रवृति अथवा मनोवृति में विकृत दिशा में गमन । इस शब्द का प्रयोग अधिकांश रूप में समाज द्वारा वर्जित यौनाचार के लिए किया जाता है । जिस व्यक्ति में इस प्रकार का आचरण पाया जाता है उसे विमार्गी अथवा " कामविपर्यस्त " कहते है । " 94

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पायें जाने वाले लैंगिक विपर्यास " निम्न तालिका में रखे जा सकते है :-

लैंगिक विपर्यास या विकृतियाँ

उपन्यास	पात्र	लैंगिक विपर्यास	पृष्ठ
1. बाणभट्ट की आत्मकथा	भट्टनी	परपीड़नरति	106
2. चारु चन्द्रलेख	नागनाथ	विकृति	353

मानविकी परिभाषिक कोश - मनोविज्ञान खण्ड - डा.पद्मा अग्रवाल पृ. 204.

चारु चन्द्र लेख	चन्द्रलेखा	शवकामुक्ता	363-364
3• पुनर्नवा	देवरात	परपीड़नरति	22
	चन्द्रा	विकृति	188, 175-176
4•अनामदास का पोथा	रैक्व	जड़सक्त प्रेमी	325
	"	"	397
	"	"	400
	"	"	450

बाणभट्ट की आत्मकथा :-

विपर्यास में परपीड़नरति एक प्रकार का विपर्यास होता है जिसमें किसी दूसरे व्यक्ति को दुखित कर व्यक्ति सन्तोष प्राप्त करता है । यह अक्सर उन व्यक्तियों के साथ ही होता है जिससे उस व्यक्ति का गहरा लगाव है । परपीड़नरति दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है - एक तो सीधे किसी के मुहँ पर दुख पहुचानेवाले शब्दों के प्रयोग से और दूसरा तरीका किसी व्यक्ति के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर बोलने से ।

उदाहरण के लिए बाणभट्ट नारी को उदात्त भावना की दृष्टि से देखता था इसके अलावा और किसी भी दृष्टि से देख ही नहीं सकता था । किन्तु भट्टिनी और निपुणिका उसकी ओर आकर्षित होती है । इससे कुछ भी उपयोग नहीं होता है । भट्टिनी बाणभट्ट की प्रशंसा बढ़ा-चढ़ा कर इस प्रकार कहती है - " कौन कहता है यह, कि तुम कवि नहीं हो ? श्लोक बनाना ही तो कविता नहीं है । निरन्तर पवित्र चिन्तन के कारण तुम्हारा चित्त विगत - कल्मष हो गया है । तुम्हारे चारित्र्यपूत हृदय में सरस्वति का निवास है । तुम्हारे अधरों में विमलधारा की भाँति वाणी का स्त्रोत झरता रहता है । कौन कहता है कि तुम कवि नहीं हो ? जिस दिन तुम्हारा शक्तिशाली वाक्स्त्रोतस्विनी से इस धरा का कल्मष धूल जायेगा, उस दिन लोगों को सचमुच शान्ति

मिलेगी । भट्ट, कविता, श्लोक को नहीं कहते । हमारे पवन, साहित्य में गध को काव्य की "निकषा" कहा है छन्द, तुक और अलंकार तो कविता के प्राण नहीं है । प्राण है रस विशुद्ध सात्विक रस । सच्चे कवि हो । मेरी बात गाँठ बाँध लो, तुम इस आर्यावर्त्त के द्वितीय कालिदास हो । " 95

चारुचन्द्रलेख :-

नागनाथ तापसी था जिसको सिद्धि की प्राप्ति के लिए सुलक्षण किशोरी के दर्शन को जरूरत थी । चन्द्रलेखा में लक्षण पा कर खुश होता है और सिद्धिरस बनाने के लिए उसकी सहायता भी लेता है । चन्द्रलेखा अपने पति की सेवा करना छोड़ नागनाथ के पीछे-पीछे घूमने लगती है । परन्तु नागनाथ में नारी प्रधानता को देख कर उसको चिढ़ भी होती है । वह अपने-आप से प्रश्न इस प्रकार करती है - "चन्द्रलेखा क्या प्रसन्न हो ? उसका रोम-रोम विद्रोह कर उठा । उसके अचल गम्भीर हृदय से धिक्कार निकला, स्त्री-शरीर को इतना महत्व देनेवाले को मैं बहुत ऊँचा सिद्ध नहीं समझ सकती । यह विकृत चिन्तन का परिणाम है । केवल जड़-पिण्ड की बनावट का आश्रय लेकर जो साधना चलेगी वह व्यर्थ होगी । गुरो, तुम भूल रहे हो । जो सिद्धि जड़-मांसपिण्ड को आश्रय करके मिलेगी, वह जड़ता को ही बढ़ावा दे सकती है । मैं स्त्री-पूजा के इस विकृत रूप का प्रत्याख्यान करती हूँ । " 96

अगर कोई सिद्ध पुरूष जरूरत से अधिक नारी के पीछे पड़ जाता है तो उसे विकृत व्यक्तित्व के अन्तर्गत माना जाता है । जैसे यहाँ चन्द्रलेखा को नागनाथ इतना अधिक महत्व देता है कि चन्द्रलेखा उसे विकृत व्यक्ति समझती है । इस का कारण यह है कि सिद्ध-जनों को संसारिक आकर्षणों से परे माना जाता है ।

---

95. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ. 106
96. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, चारुचन्द्रलेख पृ. 353-354.

चन्द्रलेखा सिद्ध-रस बनाने के लिए नागनाथ की सहायता कर रही थी । परन्तु नागनाथ के असामान्य नारी-महत्व को देखकर उसको बुरा भी लगता है । लेकिन जब नागनाथ को उसके बेटों द्वारा मारे जाने पर वह अत्यन्त दुखित होती है । इस सन्दर्भ में उसका व्यवहार निम्न शब्दों में प्रकट होता है – " चन्द्रलेखा से नहीं देखा गया वह कुछ व्याघ्रिणी की भाँति वेदी पर से कुद पड़ी और नागनाथ की मृत देह को कसकर भुजाओं में बांध लिया । उसने देखा उसके चारों और शत्रुओं का दल है । क्षणभर में यह विचार उसके मन में आया कि यदि वह उड़ सकती तो नागनाथ के शरीर को लेकर उड़ जाती । " 97 एक और सन्दर्भ भी मिलता है जो इससे सम्बन्धित है – " चन्द्रलेखा फट: कर रो पड़ी, वह सिद्धि नहीं चाहती, वह नागनाथ को जिलाना चाहती है । उसने हाथ जोड़कर कहा, हे!महात्मन् मुझे सिद्धि नहीं चाहिये । मेरी पाई हुई सिद्धियों के बदले में खोए नागनाथ को फिर से पा सकूँ । " 98

उक्त उदाहरणों से पता लगता है कि चन्द्रालेखा पहले नागनाथ से विद्रोह करती है परन्तु बाद में उससे एक तरह का लगाव स्थापित कर लेती है । इसलिए वह मृतदेह से लिपट जाती है । और आगे कहती भी है कि उसे सिद्धि की जरूरत नहीं है पर — नागनाथ को फिर से जिन्दा देखना चाहती है । ऐसा लगता है कि चन्द्रलेखा में भी एक प्रकार की विकृति है जिसको " शवकामुकता " कहते है । यह कहना तो कठिन है कि चन्द्रलेखा नागनाथ के प्रति इतना अधिक लगाव क्यों रखती थी ? एक और बात जो बड़ी विचित्र लगती है वह यह है कि एक विवाहिता नारी क्या इस प्रकार अपने गुरू के मृत-देह से व्यवाहर कर सकती है ? शवकामुकता में व्यक्ति से लैंगिक सुख की प्राप्ति होती है जो जीवित रहते हुए प्राप्त नहीं होता है । इस विकृति के आधार पर चन्द्र-लेखा के व्यवहार का अध्ययन करना, पता नहीं कहाँ तक ठीक होगा । परन्तु इतना तो जरूर कहा जा सकता है कि उसका व्यवहार सामान्य से विपरीत है ।

---

97. चारूचन्द्रलेखा पृ. 363.
98. " पृ. 364.

<u>पुनर्नवा</u> :-

देवरात शान्ति की खोज करते हलद्वीप में पहुँचता है । इसका कारण यह था कि वह मंजुला में अपनी पत्नी को देखता है । वह मंजुला की ओर आकर्षित भी होता है । इसका पता इन पंक्तियों से होता है - " उन्हें सचमुच मंजुला का नाच अच्छा लगा था । " [99] वे कभी भी इस बात को कहते नहीं थे । उसके द्वारा इतना अच्छा नृत्य करने पर भी उस पर व्यंग्य करते थे । जैसे - " बड़ी ही रमणीय साधन तुम्हें मिला है देवि ! अपने को खोकर ही अपने को पाया जा सकता है । तुम्हारा नृत्य इसी महासाधना की ओर अग्रसर हो रहा है । इस महाविद्या के बल पर ही एक दिन तुम स्वंय की दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर महा-अज्ञात के चरणों में दे सकोगी । " फिर यह सोचकर कि कहीं मंजुला के चित्त को ठेस न पहुँच जाय, वे फिर उसी को सम्बोधन करके बोले " अज्ञ जन दया का पात्र होता है देवि ! अवश्य ही तुमने कुछ समझकर ही भाषानुप्रवेश की उपेक्षा की होगी । मै तो अज्ञ श्रद्धालु के रूप में ही यह सब कह रहा हूँ । इसे अन्यथा न समझना । " [100] इन पंक्तियों को देखने से ऐसा लगता है कि देवरात मंजुला की ओर आकर्षित हो कर भी उसकी प्रशंसा न कर उसके नृत्य की समीक्षा करते है । इसे एक प्रकार की विकृति कहा जा सकता है जिसे परपीड़नरति कहा जाता है । इसमें व्यक्ति दूसरो के अर्थात्, अपने प्रिय को दुख दे कर सुख की प्राप्ति करता है । जैसे यहाँ देवरात किसी कारण वश मंजुला से अपनी दिल की बात नहीं कर पाते है, परन्तु वह अपने दिल की बात को तीखें शब्दों से उसको समझाने का प्रयत्न करते है और मंजुला भी इसको महसूस करती है कि यह व्यक्ति क्यों कभी भी मीठी छूरी चलाता या व्यंग्य करता रहता है ।

चन्द्रा कभी भी आर्यक के पीछे लगी रहती है जब कि वह विवाहिता है । परन्तु अपने पति को छोड़ कर आर्यक के पीछे घूमती रहती है । उसके व्यवहार को देख कर लगता है कि उसमें विकृति है । इसको प्रमाणित करने के लिए कई उदाहरण मिल जाते

---

99. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 20.

100. - वही - पृ. 21.

है जैसे - " चन्द्रा ने हँसते हुए कहा, " क्या बदनामी हुई तेरी ? यही न कि तू चन्द्रा के साथ अनुचित सम्बन्ध रखता है । इसमें पुरूष को क्या बदनामी है ? तेरे - जैसा जवान पुरूष मैं होती तो न जाने कितनी लड़कियों से प्रेम करती । तू तो कायर की तरह बात कर रहा है । " [101]

एक और उदाहरण जिसमें चन्द्रा, मृणाल से आर्यक के बारे में बात करती हुई कहती है - " बच्चा है बिल्कुल नादान बच्चा ? वह मन का ठण्डा है । मै तन की गरम हूँ । पुरूष को मन का गरम होना चाहिए । जिसका मन गरम होता है वह बहुत से गरम तनों को ठण्डा कर सकता है जिसका मन गरम नहीं होता, वह कितनी भी तलवार भाँज ले, स्त्री के लिए कायर ही है । स्त्री का प्रसादन कोई हँसी-खेल है रे ? विकट युद्ध है । तेरा " वह " बराबर डरता है । लगातार भागता है, लोग क्या कहेंगे, मृणाल क्या सोचेगी । कायर न कहूँ तो क्या कहूँ । लेकिन है भोला बाबा।[102]

इसके अलावा एक और उदाहरण भी मिलता है जिसमें फ्रायडीयन काम-तत्व का प्रत्यक्ष रूप देखा जा सकता है । एक घटना की व्याख्या चन्द्रा, मृणाल से करती है - " सांयकाल एक जगह रूककर खिला-पिला दिया । थोड़ा अंधेरा हो जाने दिया । निर्जन स्थान था । खूब नाटक किया । दर्द से चीखने लगी । भोलेराम के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी । कभी पैर दबाते है, बेचारा मरा जा रहा है । आदेश दे देकर एक-एक अंग दबवाया । फिर दोनों भुजाओं से कसकर सो गयी, सवेरे उठकर देखती हूँ, पहले से ही जागे है और धीरे-धीरे दबा रहे है । [103]

उक्त तीनों उदाहरण के आधार यह कहा जा सकता है कि चन्द्रा का सम्पूर्ण आचार-विचार में अतृप्त काम-वासना की साफ झलक मिलती है ।

101• हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ• 85-86•

102•

103• - वही •- पृ• 175•

अनामदास का पोथा :-

इस उपन्यास में रैक्व (नायक) में मामूली सी विकृति देखी जा सकती है जिसको जड़सक्त प्रेमी के शब्द से जाना जाता है । किसी विशेष पदार्थ या चीज़ को प्रेम का प्रतीक बनाना, उसके प्रेमी या उस व्यक्ति के द्वारा उपयोग किया जाता है । जिससे वह अधिक लगाव रखता है । इस तरह के व्यवहार को जड़सक्त प्रेमी कहा जाता है ।

रैक्व शुभा की ओर आकर्षित था । वह इसी इंतजारी में रहता है कि उसकी मुलाकात शायद किसी भी तरह शुभा से हो जायेगी पर वह तो नहीं आई । परन्तु रैक्व शुभा के रथ के नीचे ही अधिक-से-अधिक समय बीताने लगा, उसी के नीचे बैठकर चिन्तन भी करता है । असल में एक प्रकार का लगाव उसके मन में रथ के प्रति उत्पन्न हो गया था । उपन्यास में कई उदाहरण मिल जाते है जिनसे यह माना जा सकता है कि रैक्व जड़सक्त प्रेमी था । जैसे - " तीन दिन, तीर रात ऋषिकुमार उस रथ के पास बैठे रहे । उन्हें आशा थी कि कोई-न-कोई उसे लेने आयेगा । राजकुमारी के कुछ समाचार मिलेंगे । कोई नहीं आया । उन्होंने रथ को खींचकर उस स्थान पर रखा जहाँ राजकुमारी बैठी थी । उसी की छाया में मै बैठकर चिन्तन करने लगा । " 104

दूसरा उदाहरण कुछ इस प्रकार है - " रैक्व उधर ही चलने लगे । गाड़ी बुरी तरह खींच रही है । दुर्बार आकर्षण है उसका । थोड़ा और थोड़ा । नहीं अब और आगे बढ़ने पर माताजी नहीं दिखायी देंगी । यहीं रूक जाना चाहिए । मगर गाड़ी है कि खींच ही लेना चाहती है । ऐसा तो नहीं होना चाहिए । गाड़ी तो जड़ है ! उसमें प्राण भी नहीं है मन भी नहीं है, वह कैसे खींच सकती है । मैं ही विक्षिप्त हो गया हूँ । अवश्य कोई लोकान्तर शक्ति वहाँ कुछ काम कर रही है । "105

---

104. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 325.
105. - वही - पृ. 397.

शुभा से मिलने पर भी वहाँ तप और समाधि लगाने के लिए गाड़ी की जरूरत है । जैसे वह सोचता है कि - " शुभा कहती है, कम बोला करो । मैं कुछ वाचाल हो गया हूँ । मुझे अपनी वाणी पर संयम रखना चाहिए । गाड़ी मिल जाये तो मैं फिर अपने तप और समाधि के मार्ग पर लौट चलूँ । " [106]

इन उदाहरणों से उसका गाड़ी के प्रति लगाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । उपन्यास में माता ऋतुंभरा से कहता भी है कि - " शुभा की है ? हाँ है तो । मगर लगता है माँ कि जो वस्तु शुभा की है वह मेरी भी है । " [107] इन पंक्तियों से शुभा के प्रति लगाव और उस पर अधिकार को साफ देखा जा सकता है ।

द्विवेदी के उपन्यासों में कुछ लैंगिक विपर्यास से सम्बन्धित पात्र मिले है । यह कहना तो कठिन है कि आचार्य द्विवेदी को इन सब का अलग से ज्ञान था या नहीं परन्तु जाने-अनजाने में उसके पात्रों में विकृतियों से पीड़ित देखा जा सकता है । इसका यही कारण है कि सामान्य रूप से ऐसे लोग समाज में देखने को मिलते भी है ।

3·3·8 आचार्य द्विवेदी के उपन्यास :- मनोविकार से पीड़ित पात्र

प्राय: अधिकांश व्यक्ति किसी-न-किसी मनोविकार के शिकार हो जाते है । यह तब तक अधिक समस्या का रूप नहीं लेती है व्यक्ति इससे छुटकारा पाने के उपाय नहीं सोचता है । इनके बारे में ज्ञान तो साहित्यकार को होता है या नहीं । यह कहना कठिन है परन्तु साहित्य में इस तरह के लक्षणों को पाया जा सकता है । उदाहरण के लिए आचार्य द्विवेदी के " अनामदास का पोथा " उपन्यास का नायक रैक्व में मनोविकार पाया जाता है । अपराध-भावना के साथ यह मनोग्रस्ति-बाध्यता-विकार (मनोविकार) को इतनी अच्छी तरह से जोड़ा है कि ऐसा लगता है मानों आचार्य द्विवेदी को असामन्य मनोविज्ञान का ज्ञान है ।

106· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ· 451·

107· - वही - पृ· 378·

रैक्व की पीठ में खुजली होती है । जिसके कई कारण है । एक तो यह जब कभी भी खुजलाता है तो तुरन्त शुभा को याद करता है । इसे 'साहचर्य' कहते है । दूसरा कारण यह है कि उसके मन में अपराध की भावना दबी हुई है इसलिए वह सोचता है कि पीठ की खुजली के द्वारा वह अपने पाप से मुक्ति पा सकता है । असामान्य मनोविज्ञान के अनुसार यह एक प्रकार का मनोविकार है जिसको मनोग्रस्ति बाध्यता विकार कहते है जिसमें व्यक्ति अपने अपराध-भावना से छुटकारा पाने के लिए कोई ऐसा शारीरिक क्रिया करता है जिससे थोड़े समय के लिए महसूस करता है कि उसने अपराध से छुटकारा पा लिया है । जैसे रैक्व के मन में अपराध की भावना इतने गहन रूप से बैठ गया था कि बार-बार बिना उसके ज्ञान के ही पीठ पर हाथ पहुँच जाता था क्योंकि वह खुजलाते हुए सोचता है कि वह जो पाप अर्थात् अपराध किया है उससे वह मुक्ति पा रहा है ।

3.3.9 आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में पात्र;विभ्रम भाव :-

विभ्रम में बाहरी उद्दीपक के होने पर भी उसमें सम्बन्धित संवेदात्मक प्रत्यक्षीकरण का बोध होता है ।भ्रम और विभ्रम में यह अन्तर होता है कि भ्रम में बाहरी उद्दीपक होता है जहाँ कि विभ्रम में नहीं होता है और व्यक्ति को अस्तित्वहीन वस्तुएँ दिखाई पड़ती है । सामान्य विभ्रम को मानसिक रोग का लक्षण नहीं माना जा सकता । सामान्य रूप से इससे सम्बन्धित दैनिक जीवन में कई उदाहरण मिलतें है । जैसे धार्मिक संस्कारों के कारण समान्य व्यक्ति को देवी देवताओं की आवाज़ सुनाई पड़ती है । कभी-कभी ऐसा लगता है कि टेलीफोन की घण्टी बज रही है ।

" पुनर्नवा " में विभ्रम के लक्षण मिलते है जो तालिका में सूचित है । उदाहरण के लिए मृणालमंजरी अपने पति आर्यक के छोड़कर भाग जाने के कारण बहुत ही व्याकुल रहती थी -। उसे हर समय यही चिन्ता लगी रहती थी कि उसका पति कैसा होगा । यह बहुत ही स्वभाभाविक है कि जब कोई किसी व्यक्ति के लिए चिन्तित हो तो वह

उसी के बारे में सोचता रहता है । उसे ऐसा भी लगता है कि वह व्यक्ति पुकार रहा है आदि । जैसे यहाँ मृणालमंजरी को लगता है कि उसका पति उसे बुला रहा है - " मैना, मैं व्याकुल हूँ । मैं रास्ता नहीं पा रहा हूँ । मैं भटक गया हूँ । जल्दी आओ और मुझे प्रकाश की ज्योति दो । मैं सुन नहीं रही हूँ काका, उनके क्लान्त - श्रान्त मुख को प्रत्यक्ष सा देख रही हूँ । वे मुझे पुकार रहें है । हाय काका, वे कितने व्याकुल है । परन्तु मै यह नहीं सोच पा रही हूँ कि उन तक कैसे पहुँच जाऊँ । " 108

इस तरह किसी के बुलाने की आवाज किसी को सुनाई पड़ती है या बाहरी वस्तु के न होने पर भी किसी को कोई आवाज़ अगर सुनाई देती है तो वह असामान्य व्यवहार लगता है जिसको विभ्रम कहते हैं ।

विभ्रम के लक्षण देवरात में भी दिखाई देता है । देवरात अपनी पत्नी शर्मिष्ठा का रूप मंजुला में भी देखते थे । मंजुला मरते समय अपनी बेटी मृणालमंजरी को देवरात को सौंप कर मर जाती है । तब से देवरात को और भी मंजुला की याद सताती रहती थी । उन्हें ऐसा लगता है कि मंजुला उन्हें दिख रही है और साथ ही उनसे बात भी कर रही है । एकाएक उठ कर खड़े हो जाते है और कहते है - " तुम हो देवि, तुम हो छन्दों की रानी, तालों की नर्मसखी, बासी को ताजा करनेवाली पुनर्नवा । तुम हो देवि, क्या देख रहा हूँ,मुझे, यह दिव्य शोभा, यह भावमूर्ति, यह अपूर्व शालीन चारुता । क्या सपना देख रहा हूँ? भाव-लोक में उन्नमित हुआ हूँ ? हँस रही हो ? सुचिस्मिते, अपराधी को देखकर हँस रही हो मंजुलावयवे । हाय दिव्य रूपे देवरात पथभ्रान्त हो गया है । अपने में आप ही उलझ गया है । हँसो रानी, खूब हँसो, देवरात हँसते - हँसते - हँसते सह लेगा । " 109

उक्त पंक्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि देवरात को मंजुला से बिछुड़ जाने का शोक बहुत था । इसलिए वह यह महसूस करता है कि मंजुला उसके सामने

---

108. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा - पृ. 119.
109. - वही - पृ. 232.

आ गयी है । मनोविज्ञान की भाषा में इस तरह की कल्पना को विभ्रम कहते है । इतना ही नहीं देवरात को लगता है कि वह मंजुला की आवाज़ भी सुन रहा है । जैसे - " तुम्हारे मन में कहीं कोई अनुचित चिन्ता शल्य बनकर चुभ गयी है । निकाल दो उसे, फैंक दो उसे, प्यार करो उसे जो प्यार का अधिकारी है । लोगों से सुनी बातों से विचलित न होओं । तुमसे बहुत पाया है आर्य, यहाँ आकर देने की क्रिया बन्द न करों । " 110

इन पंक्तियों में भी विभ्रम के लक्षणों को पा सकते है । देवरात को बस ऐसा लगता है कि वह मंजुला को देख रहा है और उससे बात कर रहा है । इतना ही नहीं उसे मजुंला की आवाज़ भी सुनाई देती है । पर यह सब विभ्रम मात्र है ।

3.3.10 उपन्यासों के पात्रों द्वारा हीन, उच्च और उच्चता के प्रयास :-

एड्लर ने व्यवहार में हीन-भावना को काफी महत्व दिया है । उसका मानना था कि संसार में स्वाभाविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति में किसी-न-किसी प्रकार की हीन भावना होती है जिनके ऊपर विजय पाने के लिए वह अक्सर कोई ऐसा कार्य करता है कि जिससे वह महान माना जाये । कहा जा सकता है कि प्रत्येक महान व्यक्ति की महानता का कारण हीनता ग्रन्थि है । आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में प्राप्त पात्रों में हीन और उच्च भावना के समावेश का तालिका में प्रस्तुत किया गया है :-

---

110. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा - पृ. 233.

उच्च और हीन - भावना - ग्रंथि

उपन्यास	पात्र	उच्च या हीन भावना	पृष्ठ
1• बाणभट्ट की आत्मकथा	बाणभट्ट	हीन ग्रन्थि	55
2• चारुचन्द्रलेख	सामान्य विचार	हीन ग्रन्थि	365
	चन्द्रलेखा	उच्च ग्रन्थि	346
3• पुनर्नवा	मंजुला	उच्चता ग्रन्थि	21
	आर्यक	उच्चता की प्राप्ति	106
4• अनामदास का पोथा	जाबाला	हीन भावना	323
	रैक्व	हीन भावना	379
	रैक्व	उच्च या महत्ता की प्राप्ति का प्रयास	414

बाणभट्ट की आत्मकथा :-

इस उपन्यास का नायक बाणभट्ट का जन्म प्रख्यात वात्स्यायन वंश में हुआ था । यह वंश पितृ-पितामहों वेदाध्यायायों से भरा हुआ था । परन्तु बाणभट्ट बिलकुल विपरीत निकला । वह अपने बारे में इस प्रकार से कहता था - " ऐसे ही कुली पिता का मैं पुत्र था - जन्म का आवारा, गप्पी, अस्थिरचित्त और घुमक्कड़ ।"[1] वह अपने-आप को हीन महसूस करता था क्योंकि उसके सभी पूर्वज यहाँ तक कि उसके पिता भी विद्वान थे और वह हर किसी से उनके नाम से ही पहचाना जाता था । जैसे -

---

1• हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ• 24•

" क्या आप मगध के महापण्डित स्वर्गीय जयन्तभट्ट के कनिष्ट पौत्र है ? आचार्य - पाद ने आपका नाम सुनकर यह पूछने का आदेश दिया है । " मैं चौंका, तो आचार्य - पाद मुझे जानते है । मेरे समस्त कलुष-जीवन का परिचय उन्हें मिल चुका है । क्षण-भर में मेरा सिर घूम गया । अपने को बलपूर्वक सँभालकर मैंने कहा, " हाँ, मैं महापण्डित जयन्तभट्ट का ही अभागा पौत्र हूँ । " 112

उक्त पंक्तियों से ऐसा लगता है कि बाणभट्ट अवश्य गर्वित था कि उसके पूर्वज महान है । इसके साथ ही अपने आप को उनके समक्ष में हीन समझता है । इस हीन भावना की पूर्ति वह कई कलाओं को सीख कर करता है । इसके साथ वह कवि भी बन जाता है और अपनी हीन-भावना को दिखने नहीं देता है । जैसे - " आवारा तो मैं था ही । इस नगर से उस नगर में, इस जनपद से उस जनपद में बरसों मारा-मारा फिरता रहा । इस भटकन में मैंने कौन-सा कर्म नहीं किया ? कभी नट बनता, कभी पुतलियों का नाच दिखाता, कभी नाट्य-मण्डली संगठित करता और कभी पुराण - वाचक बनकर जनपदों को धोखा देता रहा सरांश, कोई कर्म छोड़ा नहीं । भगवान् ने मुझे रूप अच्छा दिया था और बोलने की पटुता भी थोड़ी-सी थी बस मेरी किशोरवस्था और जवानी के दिनों में ये ही दो बातें मेरी साध्यता करतीथी । यद्यपि लोग मेरे बहु-विध कार्य-कलाप को देखकर मुझे " भुजंग " समझने लगे थे, पर मैं लम्पट कदापि नहीं था । " 113

एडलर का हीन-भावना का सिद्धान्त बिलकुल ठीक बैठता है क्योंकि बाणभट्ट में जो भी हीन भावना थी वह कई कलाओं को सीख कर लम्पट न होने का दावा करता है ।

---

112. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ. 55.

113. - वही - पृ. 24 - 25.

चारु चन्द्रलेखा :-

इस उपन्यास में हीन भावना के सन्दर्भ में अनंगवज्र चन्द्रलेखा से कहते है कि - " पहचान जाओगी । लोक में मुग्ध दृष्टि का प्रमाद है । मनुष्य सब समान है । लेकिन लोक में उनकी समान मार्यादा स्वीकार नहीं की गयी, क्योंकि लोक-दृष्टि अविल है । वह वस्तु के यथार्थ को नहीं देख सकती । वह प्रकृति के जड़-संघात की सर्वोत्तम परिणति-मन और बुद्धि को आघात पहुँचाती रहती है । जिस मनुष्य को जितना नीच समझा जाता है, उसके मन और बुद्धि को विकसित होने से उतना ही वंचित किया जाता है । इसलिए नीच कही जानेवाली जातियों में मन और बुद्धि का बाहर प्रस्फीट नहीं हो जाता । वह शरीर के भीतर-ही-भीतर जड़-पिण्ड की उत्तेजना करता रहता है । इसलिए देवि, नीच समझी जानेवाली जातियों का शरीर साधना का सर्वोतम साधन है, उसमें भी स्त्री शरीर अधिक श्रेष्ठ है तथापि किशोरावस्था दुर्लभ है । " 114

एड्लर के अनुसार व्यक्ति में हीन भावना का उद्भव तीन कारणों से हो सकता है - एक तो - अंगहीनता के कारण दूसरे वे लोग जो बहुत ही ज्यादा लाड़-प्यार के साथ पाले गये हो और तीसरे वे लोग जिनको जानबूझकर महत्व नहीं दिया जाता है । जितनी व्यक्ति की परवाह नहीं की जाती है उतनी उसके मन में हीन-भावना का उदय होता है । और ऐसे लोगों के मन और मस्तिष्क का विकास भी नहीं होता है । अगर वे करना भी चाहे तो भी उनमें जो हीन भावना है वह उनको रोक देती है ।

हीन भावना के अलावा इस उपन्यास की नायिका चन्द्रलेखा में उच्च भावना भी देखी जा सकती है । क्योंकि वह जो नागनाथ के साथ रस बननेवाली थी इससे कई लोगों को सहायता मिलने वाली थी । जैसे वह कहती है कि - " चन्द्रलेखा का मन एकाएक झूम उठा । स्त्री-लक्षण दुर्जय अस्त्र है । जैसे नवीन मेघमाला को देखकर मयूरी भाव-विह्वल् हो जाती है, उसी प्रकार नये विचारों को पाकर उसका हृदय मदमत्त हो

---

114. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 1, चारुचन्द्रलेखा - पृ. 365.

गया । अब कोई स्त्री विधवा न होगी, कोई माता निपूती न होगी, कोई बालिका अनाथ न होगी । चन्द्रलेखा मृत्यु विजय के दुष्कर-कार्य का निमित्त बनेगी । "[115]

रानी चन्द्रलेखा अपने पति की सेवा करना छोड़ कर सिद्धियों के पीछे-घूम रही थी । और खुद सोचती थी कि वह जो कुछ कर रही है वह गलत है । फिर भी वह कार्य को छोड़ नहीं देती है बल्कि अपने-आपको महान या उस रस के बन जाने पर जो नाम वह कमाने वाली है उसके स्वप्न देखती रहती है ।

जैसे एड़लर ने कहा है कि हीन भावना की पूर्ति के लिए साधारणत: व्यक्ति कोई ऐसा कार्य करता है जिससे उसे लोग पहचाने । यही प्रवृत्ति चन्द्रलेखा में भी पायी जा सकती है । और दूसरी यह बात है कि अपराध भाव से भी अपने-आप को बचाना चाहती है ।

<u>पुनर्नवा</u> :-

मंजुला को अपने रूप और नृत्य पर अभिमान था । इतना ही नहीं वह चाहती थी कि सभी लोग उसकी प्रशंसा करे परन्तु देवरात एक ऐसे व्यक्ति थे जो उसके नृत्य को पसंद करते हुए भी कुछ नहीं कहते है और थोड़ी सुधार की आशा रखते है ।

मंजुला में छिपी हुई उच्च भावना अपने-आप बाहर आती दिखाई देती है । जैसे वह कहती है - "हलद्वीप में एकमात्र देवरात ही उसकी दृष्टि में ऐसे थे, जो उसके रूप और गुण से अभिभूत नहीं हुए थे । आज सचमुच ही उसके मन मे देवरात पर विजय पाने की लालसा थी । "[116] इसके अलावा एक और स्थान में भी मंजुला की उच्च भावना देखने को मिलती है । जैसे " मगर सारी दुनिया तो मंजुला पर मुग्ध है एक देवरात नहीं मुग्ध होता तो उसका क्या बिगड़ जाता है ? मंजुला के पास इसका कोई

115· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-1, चारूचन्द्रलेखा - पृ· 346·

116· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 2, पुनर्नवा पृ· 21·

उत्तर नहीं था । क्यों उसका मन बराबर देवरात पर विजय पाने को तरसता है । "[117] इस तरह सोचने का कारण यह था कि मंजुला में अहम् भाव का निवास तो था ही उसके साथ-साथ हीन-भावना भी थी । अहम-भाव इसलिए क्योंकि हलद्वीप के सभी लोग उसके नृत्य और सुन्दरता पर मुग्ध थे । और हीन-भावना का कारण उसका कार्य-मात्र था जिसे वह भी हीन समझती थी । जैसे वह आगे देवरात से कहती है कि - " हाय आर्य, मेरे भीतर देवता भी है यह बात तो केवल तुमने ही देखी है । लोग तो इसमें मिट्टी का ढेला ही खोजते है । मैं अपने-पाप जीवन से ऊब गयी हूँ आर्य ! हाय इस नरक से मेरा कभी उद्धार भी होगा । "[118] अर्थात् वह जो कुछ कार्य करती थी वह आदरणीय नहीं था । इस बात को छुपाने के लिए वह एक अच्छी नर्तकी बनती है और साथ में वह सुन्दर तो है ही । वह अपनी हीन-भावना को इतनी सुन्दरता से छुपा कर रखी है कि इसका ज्ञान किसी को भी नहीं होता है । यहाँ तक कि उसको भी । इसीलिए वह परेशान थी कि देवरात क्यों नहीं उसकी ओर झुकता है जब कि हर व्यक्ति उसके रूप के पीछे पागल है । एड्लर के अनुसार प्रत्येक उच्च ग्रन्थि के पीछे हीन भावना का हाथ है, यह मंजुला के सन्दर्भ में ठीक बैठता है ।

सामान्य तौर से देखा जाता है कि हर एक व्यक्ति आज वह जो कुछ है उससे बेहत्तर बनने की कोशिश करता है जो स्वाभाविक भी है । आर्यक भी इसी श्रेणी में आता है । क्योंकि विजयी सेनापति के रूप में विख्यात हो चुका था, परन्तु उसको आगे अभीवृद्धि की इतनी इच्छा थी कि वह उतने से सन्तुष्ट नहीं होता है । इसका पता इन पंक्तियों से लगता है - " आर्यक विजयी सेनापति के रूप में विख्यात हो चुका था । पर जिस समय उसकी कीर्ति बहुत ऊँचे शिखर पर पहुँच रही थी, उसी समय उसका दुष्ट ग्रह भी उच्च स्थान पर आ गया था । वह विरक्त सेनापति का काम छोड़कर भाग खड़ा हुआ । बहुत दिनो तक वह गहन विन्ध्याटवी में निरुद्देश्य भटकता रहा । उसे अपने ऊपर ही क्रोध था । क्यों वह ऐसा शिथिल चरित्र का व्यक्ति है ? क्यों वह कहीं जम नही पा रहा है ? कीर्ति की भूख उसकी मिट्टी नहीं है पर यह ठीक समझ नहीं रहा

---

117. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2 पुनर्नवा - पृ. 22.

118. - वही - पृ. 28.

है कि कीर्ति क्या चीज़ है ? उसने सुना है कि मनुष्य-जीवन का लक्ष्य यह होना चाहिए कि लोग अनन्त काल तक यश गाते रहें । यह शरीर नाशवान है, यह रुग्ण होता है वृद्ध होता है, मर जाता है । पर एक यश का शरीर है - यश काय । उसमें न रोग होता है, न जरा आती है, न मृत्यु का आक्रमण होता है । यह यश काय मनुष्य के पुरुषार्थ से प्राप्त हुआ है । आर्यक उसी यश काय को प्राप्त करने को व्याकुल है । परन्तु पा नहीं रहा है । " [119]

एड्लर के अनुसार हीन और उच्च भावन के अलावा एक और भावना भी होती है जिसको उच्चता या महत्ता प्राप्ति प्रयास करते है जिसमें व्यक्ति लगातार कोशिश करता रहता है कि आज जो कुछ है कल उससे और अच्छा बने । अर्थात् मनुष्य यह चाहता है कि वह अच्छे से अच्छा बन पाये । जैसे आर्यक को ही उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है ।

अनामदास का पोथा :-

रैक्व और जाबाला दोनों में हीन भावना देखी जा सकती है । जाबाला जब देखती है कि रैक्व इतना भोला है कि उसको किसी प्रकार का सांसारिक ज्ञान नहीं है । तब वह रैक्व की बातों पर हंसने लगती है, इस पर रैक्व बुरा मान जाता है तो वह इस प्रकार कहती है - " नहीं ऋषिकुमार, तुम स्वर्गीय ज्योति हो । मेरी हंसी तो अधम जन की कलुषित चित्त का विनोद है । हाय, तुम्हारे जैसा पवित्र मन कहाँ मिलता है ? " [120] उक्त पंक्तियों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि शुभा रैक्व की प्रशंसा करते हुए कह रही है कि वह तो उससे हीन है और रैक्व ऐसा महान तो नहीं है । ऐसा कह कर शुभा अपने-आप को छोटा अर्थात् हीन महसूस करती है । दूसरो की तुलना में अपने-आप को कम दिखाने का यह भी एक तरीका है । जो सामान्य तौर से देखने को मिलता है । अपने से बेहतर व्यक्ति को देखकर अपने-आप को तुच्छ मानना । जैसे जाबाला मानती है ।

---

119. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पृ. 105-108.
120. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, अनामदास का पोथा पृ.223.

रैक्व बुद्धिमान तो जरूर था परन्तु सं ारिक ज्ञान में कमजोर था । इसी कारण वह शुभा को अपने से बुद्धिमान और उसका गुरू भी मानता है । वह कोशिश करता है कि ज्ञान में वह शुभा तक पहुँच जाये । वह खुद कहता है - " माँ गुरू तुम हो, शुभा के सामने मैं अपने को अल्पज्ञ और हीन समझाने लगा था । वह मेरी गुरू नहीं हो सकती । मगर ज्ञानी वह अवश्य हैं माँ । उसकी सब बातें ठीक थी । " इतना ही नहीं रैक्व अपने को ही शुभा से हीन नहीं समझता है बल्कि जो कोई उसके पास आता तो उन सबको हीन समझता था । उसके अनुसार केवल शुभा ही महान है ।

रैक्व आपने-आप को शुभा से हीन इसलिए महसूस करता है कि सांसारिक ज्ञान शुभा को जितना था उतना रैक्व को नहीं । रैक्व में केवल सांसारिक ज्ञान नहीं था परन्तु वह था ज्ञानी । फिर भी वह और आगे अध्ययन करना चाहता है ताकि वह शुभा तक पहुँच सकें । वह अपनी दीदी से इस सन्दर्भ में कहता भी है । शुभा से ऋतुका जब मिलती है तो वह कुछ इस प्रकार रैक्व के बारे में कहती है - " माताजी ने उनसे और शास्त्र पढ़ने को कहा है । पढ़ रहें होंगे । मैं तो समझ ती थी कि बहुत ज्ञानी हैं । पर माताजी ने जब कहा कि और पढ़ो तो कुछ सोच के ही कहा होगा । बड़े उत्साह से गये । जाते समय मुझसे कह गये कि " दीदी, पढ़-लिखकर समझदार बनकर लौटूँगा । मैंने कहा कि कौन कहता है कि तुम समझदार नहीं हो, तो निश्चल भाव से बोले, " शुभा के समान समझदार बनकर लौटूँगा । वह बहुत जानती है । उसे धर्म अधर्म का पूरा ज्ञान है, मुझे तो अल्पज्ञ समझ ती है । पढ़कर लौटूँगा तो वह देखेगी कि मैं भी उसी के समान समझदार हो गया हूँ । हो जाऊँगा न दीदी । " [121]

एडलर की भाषा में इसको उच्चता या महत्ता की प्राप्ति का प्रयास कहते है । क्योंकि रैक्व में ज्ञान की कमी नहीं थी फिर भी वह और भी ऊँचे स्तर पर पहुँचना चाहता था ताकि वह शुभा के बराबर हो जाये । अर्थात् अपने स्तर से ऊँचा उठने की कोशिश उसमें थी ।

---

121. वही , पृष्ठ नं - 414

3·3·11 उपन्यासों के कुछ संदर्भ युंग के समूहिक अचेतन सिद्धान्त :-

युंग ने फ्रायड द्वारा अचेतन पर जो विचार प्रकट किये गये थे उनको मान लिया था । इसके साथ ही उन्होंने अचेतन को दो भागों में बांटा था - व्यक्तिगत अचेतन और सामूहिक अचेतन । युंग के अनुसार व्यक्तिगत अचेतन के निर्माण में दमित व्यक्तिगत इच्छाओं, स्मृतियों और अभिप्रेरणाओं का महत्व होता है । सामूहिक अचेतन में आनुवंशिक से इच्छाओं, प्रेरणाओं आदि का समावेश होता है । दूसरे शब्दों में मानव जाति के एकत्रित अनुभव सामूहिक अचेतन में मूलरूप में रहती है ।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में कई ऐसे उदाहरण मिले है जिनका युंग सिद्धान्तों के अनुसार अध्ययन किया जा सकता है । बाणभट्ट की आत्मकथा में लेखक ने पौराणिक मिथ महावराह (विष्णु का एक अवतार) का प्रयोग किया है । जिसकी उपासना निपुणिका और भट्टिनी करती है । महावराह के बारे में वर्णन बाणभट्ट इस प्रकार से करते है - " पास में एक छोटी वेदी थी और उस पर महावराह की एक अत्यन्त भव्य मूर्ति रखी थी । मूर्ति छोटी ही थी, पर जिस मूर्तिकार ने उसे बनाया था, वह बहुत ही पका हुआ शिल्प जान पड़ता था । महावराह के दांतो पर उठी हुई धरित्री के मुखमण्डल पर जो उल्लास और दीप्ति का भाव था, वह देखते ही बनता था । महा-वराह के दोनों हाथ कटि-देश पर इस प्रगल्भता के साथ टिके हुए थे और बाहुबल की पेशियां इस दृढ़ता के साथ निकाली गयी थी कि देखकर मन में एक अपूर्व विश्वास उद्रिक्त हो उठता था । " 122

निपुणिका महावराह की उपासना करती थी जो हिन्दु पौराणिक कल्पना में विष्णु के दशावतारों में से तीसरा अवतार है । इसके सन्दर्भ में एक काल्पनिक कथा है जो इस प्रकार है - कश्यप तथा दिति के पुत्र हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु से संसार आतंकित हो उठा । पृथ्वी के लोगों के यजन से देवों की शक्ति न बढ़ पाये, यह सोच हिरण्याक्ष पृथ्वी को लेकर एकार्णव जल में घुस गया और रसातल में चला गया । जब

122· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा पृ· 33·

पृथ्वी का उद्धार करने तथा हिरण्याक्ष का वध करने के लिए ब्रह्मा की नाक से भगवान विष्णु ने वराह रूप में अवतार लिया और समुद्र के भीतर जाकर पृथ्वी को अपनी दाढ़ों से उठा लिया तथा संग्राम के लिए आगे बढ़े हिरण्याक्ष की कनपटी पर भगवान ने एक तमाचा मारा तो हिरण्याक्ष अचेत हो नीचे गिर पड़ा उत्तर कुरुवर्ष में यज्ञमूर्ति भगवान वराह पृथ्वीदेवी से सेवित हो विराजमान है । "[123]

विष्णु के उपासक तो कई लोग है जो किसी विशेष अवतार को पूजते है । परन्तु आचार्य द्विवेदी के उपन्यास में महावराह अवतार का वर्णन मिलता है । यह कहना कठिन है कि ये दशावतार सत्य है या नहीं । अधिकतर इसको काल्पनिक माना जाता है । आचार्य द्विवेदी को मिथक के प्रति अधिक मोह होने के कारण उनके उपन्यासों में प्रयोग हुआ है ।

" महावराह " का वर्णन पुनर्नवा में भी मिलता है । इसमें गोपाल आर्यक को महावराह से तुलना किया गया है । जैसे - " सुना नहीं वह प्राकृत दोधक, जिसमें गोपाल आर्यक को महावराह की भाँति धरती का उद्धार करनेवाला कहा गया है ? अब तो विदिशा के गाँवों में भी ल्वारिक को अवतार कहकर उसकी कीर्ति-कथा गायी जाने लगी है । "[124]

आर्यक को महावराह से इसलिए तुलना किया गया है कि भगवान महावराह (विष्णु) लोक-कल्याणकारी है और आर्यक भी जन-सेवक है । जैसे - " एक और सन्दर्भ आता है जो इससे सम्बन्धित है - भगवान श्रीकृष्णचन्द्र को " कान्हा " या " कन्हैया " कह देते हो तो उनकी महिमा कुछ कम थोड़े ही हो जाती है । "[125]

---

123. पौराणिक संदर्भ कोश, एन.पी.कुट्टन पिल्लै, पृ. 637.

124. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 177.

125. - वही - पृ. 137.

इस तरह की तुलना सामान्य तौर पर देखी जा सकती है । अगर किसी व्यक्ति में देवता का गुण पाया जाता है तो उसे किसी देवता के नाम से जाना जाता है । जैसे आर्यक को महवराह के रूप में ।

आचार्य द्विवेदी ने चारों उपन्यासों में नारी को सम्मान दिया है । जो परम्परा से चली आ रही है । इसके साथ ही विशेष कर लेखक की यह धारण थी कि नारी महाशक्ति की आस्था है । नारी की सार्थकता किसी पुरूष से बंधने में ही है । इस विचार को उन्होंने महामाया के द्वारा व्यक्त किया है । " नारी की सफलता पुरूष को बांधने में है, सार्थकता उसे मुक्ति देने में । यह सफलता है या सार्थकता मेरे मन में रह-रहकर यही बानी निकलती रही कि नारी सौन्दर्य यहाँ बन्ध्य है, निष्फल है, अमर है । क्यों ऐसा हुआ ? इस महान शक्तिशाली तत्व से बड़ी भी कोई शक्ति है क्या जिसने हमें इस तरह हीन दर्प बना दिया है । " [126]

आचार्य द्विवेदी की दृष्टि में सभी नारियाँ सम्मान्य है । इस का स्पष्ट रूप बाणभट्ट के शब्दों में देखिए - " आजीवन उसने नारीदेह को पवित्र देवप्रतिमा समझा है । वह जहाँ भी हो, जिस अवस्था में थी हो सम्मान और श्रद्धा की वस्तु है । "[127]

चारूचन्द्रलेख में चन्द्रलेखा के दिव्य मनोहर रूप के कारण अन्य पात्र उसे कभी दुर्गा, त्रिपुर-सुन्दरी साक्षात् भगवती के नामसे अभिहित करते है । लेखक के विचार विधाधर द्वारा प्रकट होते है । - " तुम साक्षात पार्वती का रूप हो । तुम्हें रानी रूप में वरण करने के कारण आज अवन्तिका के क्षीण दुर्बल राज्य का अधिपति परम शक्तिमय हो गया है । तुम्हारी शिराओं में प्रतापी चन्देलों का दुधर्ष रक्त प्रवाहित हो रहा है । तुम्हारा जन्म ही संसार को मुक्ति देने के लिए हुआ है । " [128]

---

126. बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. नृ. 92 .

127. - वही - पृ. 151.

128. हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली - भाग - 1, चारू चन्द्रलेख पृ. 761.

प्राचीन भारतीय संस्कृति में पराई नारी को देवी के रूप में देखा जाता था । आचार्य द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के प्रतीक और आख्याता के रूप में माने जाते है । इसलिए इनकी रचनाओं में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है । नारी तत्व और नारी महिमा का वर्णन आचार्य द्विवेदी के चारों उपन्यासों में मिलते है । इसका कारण यह है कि लेखक में यह धारणा अचेतन में मूल रूप से है । उनको कई विद्वानों के लेखन ने तो प्रभावित किया था । इसके साथ-साथ प्राचीन साहित्य का गहन अध्ययन किया जिसका प्रयोग भी करते थे । इसलिए इसी का प्रभाव उनके उपन्यासों में भी देखने को मिलता है ।

युंग के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार कुछ अनुवंशिक और कुछ अर्जित होते है । जैसे द्विवेदी में नारी सम्मान की भावना अचेतन में अनुवंशिक रूप में था, साथ ही कुछ हद तक अर्जित भी थी ।

3.3.12 आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में प्राप्त परामनोविज्ञान से सम्बन्धित सन्दर्भ :-

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों का मनोविश्लेषण सिद्धान्तों के आधार पर अध्ययन करते समय कुछ सन्दर्भ ऐसे मिले है जिनका मनोविश्लेषण, परामनोविज्ञान के दृष्टिकोण से भी किया जा सकता है । मानव इतिहास जितना पुराना है उतनी ही पुरानी घटनाएँ मिलती है जो परामनोविज्ञान से सम्बन्ध रखती है । परन्तु इनकी व्याख्या करना अभी भी सम्भव नहीं हुआ है । प्राचीन भारत, चीन, यूनान, मिस्र की संस्कृति हो या आधुनिकतम यूरोप ब्रिटेन या अमेरिका की, सभी में इस विषय से सम्बन्धित सामग्री जरूर मिल जाते है ।

मानविकी परिभाषिक कोश के अनुसार 'पैरासाइकालोजी' की परिभाषा इस प्रकार है - " मनोविज्ञान की वह शाखा जिसमें उन व्यवहारों अथवा वैयक्तिक योग्यताओं का अध्ययन होता है जो स्पष्ट तथा अभौतिक अर्थात् इन्द्रियों की सीमाओं से परे हैं अथवा भौतिकी नियमों के अन्तर्गत असम्भव प्रतीत होती है । इससे दो मुख्य विभाग है एक में अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष और दूसरे में अदैहिक गति का अध्ययन किया जाता है । अतीन्द्रिय

प्रत्यक्ष के सम्बन्ध में परेन्द्रिय, अतीन्द्रिय दृष्टि एवम् पूर्वासंज्ञान अध्ययन के विशेष विषय है । "[129]

चारु चन्द्रलेखा में दो सन्दर्भ मिलते हैं जो अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष से सम्बन्धित है । जैसे - "मैंने स्वप्न देखा कि कोई रक्ष-वेश तापस मुझे जगा रहा है । नींद खुली तो सामने साचमुच ही एक तपस्वी खड़े थे । ऐसा जान पड़ा कि उन्होंने मुझे पहचान लिया । बोले, "राजन देर हो रही है । निद्रा में समय न गवाँओं सीधे पशिचम की ओर घोड़ा दौड़ाओं । सीदी मौला नहीं मिलेगा, सीदी देवी मिलेगी ।[130]

राजा सातवाहन स्वप्न में देखता है कि कोई तपस्वी आकर जगा रहा है परन्तु जागने पर वह देखता है सचमुच एक तपस्वी जगारहा था और वह पशिचम दिशा की ओर जाने के लिए कह रहा था क्योंकि सीदी की प्राप्ति राजन को होनेवाली थी और राजा सातवाहन जब पूर्ण रूप से जागृत अवस्था में आते है तो उनको पात नहीं रहता है कि वे स्वप्न देख रहे थे या कोई वास्तव में जगा कर गया । फिर भी जब उसी दिशा में जाते है तो उनकी भेंट चन्द्रलेखा से होती है जो बत्तीस लक्षणों से युक्त नारियों के अन्तर्गत आती थी । इस दृश्य को देख कर बड़ा अजीब लगता है । क्योंकि तपस्वी के बारे में राजा को कुछ याद नहीं था परन्तु उनको लग रहा था कि पशिचम दिशामेंसीदी होगी और ठीक इसी प्रकार होती है । परामनोविज्ञान के अनुसार इसको 'अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण' कहा जा सकता है जिसकी सहायता से राजा सीदी के बारे में पता लगा लेते है । अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण में किसी मन-प्रभाव अथवा भौतिक वस्तु या घटना का बोध किसी इंद्रिय संवेद अथवा तार्किक अनुमान से होता है ।

एक और उदाहरण इस संदर्भ से सम्बन्धित मिलता है जो रानी चन्द्रलेखा के साथ घटती है । रानी चन्द्रलेखा जो एक गरीब किसान की बेटी थी, उसकी भेंट एक तपस्वी से होती है जो उसकी हस्त-रेखा देख कर कहता है - "स्वस्तिका और मत्स्य

---

129. मानविकी पारिभाषिक कोश - मनोविज्ञान खण्ड, पद्मा अग्रवाल, पृ. 198.
130. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग - 1, चारु चन्द्रलेखा पृ. 264.

का यह युग सम्मिलन अपूर्व योग है । शेष कमल और व्यंजन के चिह्न केवल भगवती विमला के हाथ में प्रकट हुए थे । आश्चर्य है देवी, यदि तुम राज्ञी पद पर आसीन नहीं होती हो तो शास्त्र मिथ्या सिद्ध होंगे । फिर उसने चन्द्रलेखा की कलाइयों को हाथ में लेकर कहा, " पद्मगर्भ के समान मणिबन्ध दुलर्भ लक्षण है । भविष्य में कौन जाने क्या घटने-वाला है । पर लक्षण तुम्हे रानी ही नहीं, रानी से बड़ी बनायेंगे । तुम्हारे हाथ में अपूर्व योग है । " 131

तपस्वी जिस प्रकार चन्द्रलेखा से कहता है ठीक उसी प्रकार उसके आगे के जीवन में घटता है । उसकी भेंट राजा सातवाहन से होती है और वह उसके सौन्दर्य से आकर्षित होकर शादी कर लेता है । वह रानी तो बन ही जाती है इसके साथ सिद्ध नागनाथ के सम्पर्क में आने के कारण वह सिद्धिरस भी उनके साथ मिल कर बनाती है । ऐसा लगता है कि तपस्वी ने अपने " अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण " की सहायता से उस भविष्य के बारे में सोचा जो बिलकुल सही निकला । कभी-कभी इस तरह की बात को देखने के लिए मिल जाता है या कोई व्यक्ति बोल जाता और वह उसी तरह से घट जाता है । परन्तु यह तो संयोग की बात है ।

चारू चन्द्रलेख के अलावा पुनर्नवा में भी एकऐसा दृश्य देखने को मिलता है जो परामनोविज्ञान से ही सम्बन्धित है । जैसे - " बहुत दूर से भी कोई व्यक्ति को गाढ़ अनुभूति के साथ स्मरण करे, लगन के साथ पुकारे या अपने दुख को संवेदित करना चाहे तो समष्टि चित के माध्यम से वह उस व्यक्ति - विशेष के चित्त से उसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है । " 132

ऐसे दृश्य सामान्य तौर पर देखने को मिलते है । एक व्यक्ति कुछ सोचता है । एक व्यक्ति कुछ सोचता रहता है और दूसरा जो बहुत दूर है, एहसास करता है । परामनोविज्ञान में इस तरह के सन्दर्भ को परेन्द्रिय कहते है । जैसे उक्त पंक्तियों में

---

131. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 1, चारु चन्द्रलेखा पृ. 277.
132. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 119.

देवरात मृणालमंजरी को इसके बारे में समझा रहे है । परेन्द्रिय में इन्द्रियों की सहायता के बिना विचार एक मन से दूसरे मन में पहुँच जाते हैं ।

3.3.13 निष्कर्ष :-

समाज को प्रभावित करने वाली कई विचारधाराएँ है । ये कुछ साहित्यकारों को अपने प्रवाह में बहा ले गयी । जैसे डार्विन, मार्क्स और फ्रायड की विचारधाराओं ने विशेषकर समाज के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया । यह तो कहा नहीं जा सकता है कि सभी उपन्यासकार इन सिद्धान्तों से प्रभावित थे । परन्तु कुछ विशेष लेखक हुए है जो इनमे किसी एक विचारधारा के सिद्धान्त को ही ध्यान में रखते हुए अपनी रचनाएँ की हैं। उदाहरण के लिए फ्रायड के मनोविश्लेषण से प्रभावित कुछ उपन्यासकार मिलते है जिनके उपन्यास सीधे इसी सिद्धान्त पर आधारित रहता है । इसके अलावा भी कुछ उपन्यास मिलते है जिनकी रचना सीधें इन सिद्धान्तों के अनुसरण पर नहीं हुई है । परन्तु उनका भी अध्ययन इन सिद्धान्तों के आधार पर किया जा सकता है । जैसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास ।

इस अध्ययन में फ्रायड, एडलर युग और कुछ असामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्धित सन्दर्भ मिलते है । यह कहना कठिन है कि पूर्ण रूप से आचार्य द्विवेदी को पाश्चात्य मनोविज्ञान और उसके विकास का ज्ञान था या नहीं । परन्तु उन्होंने इतने सुन्दर ढंग से सिद्धान्तों का अन्वयन अपने उपन्यासों में किया है कि ऐसा लगता है कि लेखक को सिद्धान्तों की अच्छी पकड़ थी ।

इनके उपन्यासों में पायें जाने वाले विशिष्ट सिद्धान्तों से सम्बन्धित सन्दर्भों को एक ही स्थान पर रख कर विवेचन किया गया है - पराहम्, अचेतन, उच्च और भावना, सामुहिक अचेतन आदि । अर्थात् कुल बारह उपशीर्षकों के अन्तर्गत चारों उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी में मानव-मन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को पकड़ने कि शक्ति अभूतपूर्व थी जो विज्ञान की कसौटी पर भी खरा उतरता है । बारह उपशीर्षकों में विवेचित अंश इस कथन की सार्थकता को पुष्ट करते है ।

चतुर्थ अध्ययन

उपन्यास तत्व और मनोविश्लेषण

उपन्यास तत्व और मनोविश्लेषण

4·1 मनोवैज्ञानिक उपन्यास और कथावस्तु :-

उपन्यास के विविध तत्वों में सर्वप्रथम कथानक वह है, जो उपन्यास की रचना का मूल आधार होता है । कथानक के अन्तर्गत वे पूरी घटनाएँ आजाती है जिनसे उपन्यास की रचना होती है । कथानक के बिना उपन्यास की रचना सम्भव नहीं होती है । कथानक का विवेचन करते हुए हिन्दी साहित्य-कोश में कहा गया है - " काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि के उस भाग को कथानवस्तु कहते है कि मूलकथा भाग या इतिवृत्त के साथ संस्वहड़ वे समस्त घटनाएँ भी आती है जिनसे मिलकर कथात्मक साहित्य विशेष की विषय वस्तु बनती है । "[1]

1· हिन्दी साहित्य - कोश - ज्ञान मंडली लिमिटेड़ - पृ· 186·

उपन्यासकार कई चीजों को आवश्यकतानुसार उपयोग करता है जैसे - " कथासूत्र, प्रासंगिक कथाएँ, उपकथाएँ आदि । प्रमुखकथानक वही होता है जो नायक या उपन्यास के प्रमुख पात्र के साथ चलता है । और साथ ही प्रासंगिक कथाएँ और उपकथाएँ भी आ जाती है । उपन्यासकार अपनी इच्छा अनुसार घटनाओं को चुनकर अपनी कल्पना की सहायता से कथावस्तु का निर्माण करता है जिसमें लेखक का उद्देश्य साथ होता है । कथानक का निर्माण पात्रों के क्रिया-कलाप से ही होता है । ये जितने सजीव होंगे उतना ही प्रभावशाली कथानक होगा ।

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों ने उपन्यास के क्षेत्र को आधुनिकयुग में बहुत प्रभावित किया है । सामान्य तौर पर उपन्यासों में किसी सत्य को देखने का प्रयत्न किया जाता है । उपन्यासकार किसी एक सत्य कथा को लेकर कुछ काल्पनिक कथाएँ और उपकथाएँ जोड़ कर उपन्यास पूरा करता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कथावस्तु के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का कहना है कि - " कथा का मूल अचेतन ही अव्यवस्थित हो तो फिर उपन्यास में व्यवस्था कैसे आयेगी ? इसीलिए इनके उपन्यास का प्रारंभ भी कहीं पर होता है, और अन्त भी कहीं पर होता है । पाठकों के सामने वे अचेतन की अव्यवस्थित सामग्री को बिखराते है और आशा करते है कि बुद्धिमान पाठक उन कथा के टुकड़ों को जोड़ कर अपने ढंग की कथा का निर्माण करें । " 2

उपन्यासों में साधारण कथानक का विकास बाहरी परिवेश में होता है । परन्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में बाहरी परिवेश से अधिक अन्तरिक परिवेश (Mental state) को महत्व दिया जाता है और साथ ही कथावस्तु विस्तार न होकर संकुचित होती जाती है । डा॰प्रेमभटनागर का कहना है कि " नये उपन्यासकारों ने

2• हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास - डा॰ धनराज मानदने - पृ॰ 136•

विस्तार की अपेक्षा गहराई परिमाण ﴾ घटनाओं की संख्या ﴿ की अपेक्षा गुण और स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता को प्रश्रय दिया है । समय और स्थान भी अब सीनिक होते जाते है । " 3

आधुनिक उपन्यास व्यक्ति को महत्व अधिक देता है उसके हर एक संवेगों को ध्यान देता है लेखक । कथानक का विश्लेषण करते हुए डा॰मानधने ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि - " मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की कथावस्तु बिलकुल अछूते, अंधारे, अन्देहे और अनबूजे पक्ष को लेकर चलती है । " 4

4•1•1 आचार्य द्विवेदी के उपन्यास-कथावस्तु :-

बाणभट्ट की आत्मकथा :-

इस उपन्यास में इतिहास का सहारा लेकर लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति का विशेष उपयोग किया है । इसके कुछ ही पात्र ऐतिहासिक है । आचार्य द्विवेदी का यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । इस उपन्यास का महत्वपूर्ण होने का एक और कारण यह है कि इस में भारतीय संस्कृति और साहित्य का गम्भीर अध्ययन और अभिव्यंजना शैली का उच्च स्तर है । इस उपन्यास की कथा एक विशिष्ट क्रम और संगति से संगठित है, इसके साथ ही पात्रों की शिष्टता और मनोवैज्ञानिक विकास पर अधिक बल दिया गया है ।

इस उपन्यास का पूर्ण रूप से सांस्कृतिक और ऐतिहासिक होने पर भी उसका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है । क्योंकि इसमें कई विश्लेषण करने लायक सन्दर्भ मिलते है जैसे आरंभ में ही बाणभट्ट में हीन भावना को देखा जा सकता है

3• हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते - डॉ॰प्रेमभटनागर, पृ• 16•

4• हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास - धनराज मानदने - पृ• 238•

और आगे इस भावना को छिपाने के लिए उसका प्रयत्न । निपुणिका की ओर उसका आकर्षित होना परन्तु पराहम के कारण उसका रुक जाना । निपुणिका का भट्ट की ओर मोहित होना पर इससे कोई फायदा न होने के कारण अपनी भावनाओं को उदात्तता में बदल लेना आदि है । भट्टनी के चरित्र में महानता की बात यह है कि उसमें आत्मगौरव और अपने लोगों के लिए आत्मीयता थी । उसके मन की बातों को जीभ से फिसलते हुए देखा जा सकता है ।

इस तरह कई मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों से सम्बन्धित सन्दर्भ मिलते है जिससे कथावस्तु का अध्ययन इन दिशा में किया जा सकता है ।

<u>चारुचन्द्रलेख</u> :-

चारु चन्द्रलेख भी हिन्दी जगत में माना हुआ उपन्यास है । इसका मुख्य उद्देश्य - "राष्ट्रीय चेतना " है । परन्तु इस उपन्यास में मानव मन की मनोवैज्ञानिक स्थिति और अन्तर्द्वन्द्व ही कथानक में प्रमुख रूप से मिलते है ।

एक आलोचक के शब्दों में - " कथा में राजनीतिक दाँवपेंच है, प्रजातन्त्र का जयघोष है, तांत्रिक और बौद्ध साधनाओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ है, सिद्धों की सिद्धियों का चमत्कार है, गोरखनाथ के योग का प्रताप है, नटु नटकला चपल कृष्ण की लीला का गान है, सामन्ती समाज व्यवस्था पर प्रकाश है, रणनीति की विवेचना है, देश में सोने के रिजर्व स्टाक की समाप्ति की घोषणा है और मुद्रा स्फीति की समस्या है । विदेशी आक्रमण है, इस्लाम की विशिष्टता भी है और प्रेम की पुकार भी आश्लेष में लेटी हुई बाहुएँ भी है और तलवार भांजती हुई भुजाएँ भी । इनमें कोटि-वेधि रस भी है और मर्म भेदी दृष्टि भी अमोघवाक् भविष्यवाणियाँ भी है और पृथ्वी से पराजित होने वाले; ग्रह-नक्षत्र भी । चारुचन्द्रलेख " में भारतवर्ष की मोहक प्रकृति-वन, लता, वृक्ष पुष्प उपत्यका, चाँदनी, सूर्योदय है और है कालिदास की कविता और उस कविता

की व्याख्या । ..... अस्तु इसमें अतीत का विकास है, वर्तमान के विचार है एवं भविष्य के लिए संदेश है, और इस अर्थ में काल के एक खण्ड में सीमित न रहकर कथा त्रिकाल व्यापिनी हो जाती है त्रिजगन्मनोज्ञा त्रिपुर सुन्दरी की भाँति । " 5

इस उपन्यास में ऐतिहासिक तत्व से अधिक सांस्कृतिक तत्व मिलते है । लेखक ने स्वयं ही मूल प्रेरणा के सन्दर्भ के विषय में कहा है कि " नाथ सम्प्रदाय के बारे में लिखते समय, तन्त्रों के बारे में चर्चा करते हुए, मुझे लगा कि सिद्वियों के पीछे भागने के कारण हमारा देश मध्यकाल में आगे नहीं बढ़ पाया । मध्यकाल स्तब्ध मनोवृत्ति का काल था । वही इस उपन्यास का प्रेरक बना । " 6

चन्द्रलेखा अद्भूत उपन्यास होने का कारण यह है कि तान्त्रिक साधनाओं का लेख है । उपन्यास में मुख्य रूप से मध्यकालीन साधनाओं की व्याख्या और राज - नीतिक विचारों और पतन के बारे में है । यह उपन्यास भी आत्मकथात्मक शैली में ही है । इस उपन्यास में भी कई मनोविश्लेषण से सम्बन्धित सन्दर्भ मिलते है जैसे राजा का स्वप्न देखना, विभिन्न रक्षा युक्तियों से सम्बन्धित सन्दर्भ, जैसे नागनाथ, चन्द्रलेखा में लैंगिक - विपर्यास से सम्बन्धित आदि मिलते है । जिनका विश्लेषण करने मात्र से ही पता चलता है ।

आचार्य द्विवेदी जी ने भले ही चारु चन्द्रलेख की कथावस्तु का विषय ऐतिहासिक और सांस्कृतिक क्यों न लिया हो परन्तु है तो मनुष्य से सम्बन्धित ही । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कथावस्तु का मनोविश्लेषण सिद्वान्त पर आधारित न होते हुए भी उनका इस दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है ।

---

5. सारिका { 16 } वर्ष 1937 के 246 { डॉ. रणबीर

6. हजारी प्रसाद द्विवेदी में सांस्कृतिक बोध, संजीव पृ. 38.

पुनर्नवा :-

पुनर्नवा की कथावस्तु गुप्त युग की ऐतिहासिक और साहित्यक साम-ग्रियों के आधार पर रचा हुआ उपन्यास है । लेखक ने यह दिखलाने की कोशिश की है कि इस संसार में जो कुछ भी है अर्थात् प्रकृति, संस्कृतियां, लोग, उनके विचार सभी समय के साथ सभी पुराने या बासी हो जाते है । परन्तु बासी को ताजा करने का प्रयास मनुष्य करता है । जैसे देवरात मंजुला को देख कर अपनी बासी याद को ताजा करता है । जिसका वर्णन बड़े ही सुन्दर रूप से लेखक ने किया है । इन सन्दर्भो का अध्ययन मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि (रक्षायुक्ति) से किया जा सकता है । उदाहरण के लिए - "पुनर्नवा देवि, तुम नित्य नवीन होकर मानस पटल पर उदित होती हो । जानती नहीं किस मर्म वेदना को जगा जाती हो, किस बासी घाव को नया कर जाती हो देवरात स्वयं मुर्झा गया है, उसमें पुनर्नवा के स्वागत करने की क्षमता नहीं है । पुन-र्नवा बनकर नित्य आती रहो । तुम्हारा थोड़ा कष्ट किस को हरा कर जाय तो क्या हर्ज़ है देवि ! नहीं, तुम नित्य नवीन होकर मेरी पुनर्नवा रानी ।" [7] इसके अलावा स्वप्न सिद्धान्त से सम्बन्धित सन्दर्भ भी मिलते है । चन्द्रा में लैंगिक विपर्यास को देखा जा सकता है । जिसका वर्णन लेखक ने बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है ।

" पुनर्नवा " उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है । इस उपन्यास के माध्यम से सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन की अपेक्षा रखा गया है । साथ ही मन की भावनाओं को बलवत दबाने के विरोध को दिखाया है ।

अनामदास का पोथा :-

" अनामदास का पोथा " की कथावस्तु का आचार्य द्विवेदी ने छंदोग्य और बृहदाख्यक उपनिषदों से संकलित किया है । इस उपन्यास में लेखक काम और प्रेम सम्बन्धी अपने विचारों को प्रस्तुत करते हुए नारी पुरूष के पारस्परिक सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक

---

7. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 245 - 248.

विवेचन किया है । जैसे इस उपन्यास का नायक रैक्व भोला इंसान है । उसे संसारिक ज्ञान बिलकुल नहीं है । इसी रूप में उपन्यास के अन्त तक पाया जाता है । कथा भी इसी के इर्द-गिर्द ही घूमता है । गौर से देखा जाय तो लगता है कि असल में कथा का कोई विशेष रूप नहीं है केवल यहाँ महत्वपूर्ण लेखक की रचना-प्रक्रिया है, जो सन्दर्भ के अनुसार लिखा है । रैक्व के पीठ में हो रही खुजली के बारे में व्याख्या उपन्यास के आरंभ से ही मिलती है जो शुभा से मिलने तक बनी रहती है । इसी सन्दर्भ को मनोविश्लेषण में सिद्धान्त के तीन कोणों से देखा जा सकता है । इसके अलावा स्वप्न सिद्धान्त, अपराध भावना, जीभ से फिसली बात आदि से सम्बन्धित सन्दर्भ भी हैं ।

इस उपन्यास की कथा भले ही साधारण हो परन्तु लेखक की वर्णन पद्धति बहुत ही आकर्षक है, क्योंकि उन्होंने घटनाओं के अनुसार शब्दों का प्रयोग किया है ।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यास की कथावस्तु का विवेचन करने पर कहा जा सकता है कि इनके चारों उपन्यासों की कथावस्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कथावस्तु के नियमों से भले ही न मिलती हो फिर भी इतने अधिक सन्दर्भ मिलते हैं जो अनेक मनोविश्लेषण सिद्धा-न्तों की भूमिका में विवेचन किया गया है ।

4.2 चरित्र - चित्रण का विवेचन :-

प्रेमचन्द्र का कहना है कि - " मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । " यह पंक्ति ही उपन्यास में चरित्र-चित्रण के महत्व को दिखाती है । आधुनिक उपन्यासों के सभी पात्रों को याद शायद ही कोई रखता होगा । किन्तु कुछ विशिष्ट पात्र होते हैं जैसे " गोदान " का होरी, " शेखर : एक जीवनी का शेखर आदि पात्र जिनको कई लोग जानते हैं । इन पात्रों को देखने पर लगता है कि उपन्यास-कारों ने अपनी प्रतिभा उनमें पूर्ण रूप से भर दी है । जिससे अपने पात्रों के द्वारा वे भी सदा के लिए जीवित हैं ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चरित्र-चित्रण साधारण उपन्यासों से अलग होता है, जैसे, लेखक बाहरी परिस्थितियों के चित्रण से अपने पात्रों की आन्तरिक स्थिति के वर्णन को ही अत्यधिक महत्त्व देता है । आजकल आन्तरिक आकृति का वर्णन तो रूप और गुण से विशेष माना जाता है । शारीरिक क्रियाओं के द्वारा भी मानसिकता को पढ़ा जाता है ।

मनोविश्लेषण सिद्धान्त से प्रभावित लेखक प्रधान रूप से मानव मन में निहित उन कुण्ठाओं का चित्रण करते हैं जो व्यक्ति के जीवन के विविध रूपों में व्यक्त करते हैं। मनोविज्ञान सामान्य मनुष्य के अध्ययन का साधन नहीं होता वरना कुंठाग्रस्त मनुष्य की दमित वासनाओं के अध्ययन का साधन बनता है । चरित्र-चित्रण का समग्र आधार यही मानकर चलने वाले उपन्यासकारों ने मनोविज्ञान (मनोविश्लेषण कहना अधिक ठीक होगा) को अपनी रचनाओं का प्रमुख उपजीव्य बना लिया है । इस प्रकार के चरित्र-चित्रण से अवगत होने के लिए भी इलाचन्द्र जोशी के विचार महत्वपूर्ण होंगे "शराब खोरी और वेश्यागांमिता के झुकाव के कारण खोजने के लिए वह उपन्यासकार केवल बाहरी सामाजिक कारणों को ही नहीं खोजेगा, बल्कि उसके विकृत "अहं" के प्रत्येक स्तर को चीर-चीर कर उसके भीतर से ही मूल कारण खोज निकालेगा । वह उनके यथार्थ के भीतरी रूप को अनावृत रूप में जनता के आगे रखकर उनका भंडाफोड़ करके समाज को उनके खतरे से बचते रहने के लिए सचेत करेगा ।" [8] आचार्य द्विवेदी के उपन्यास के पात्रों का मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार विश्लेषण भी किया जा सकता है । आगे इसी पर विचार प्रस्तुत है ।

बाणभट्ट की आत्मकथा :-

इस उपन्यास का नायक बाणभट्ट में हीन भावना, अपराध-भावना, अचेतन मे दमित इच्छाएँ (जो उदात्तीकृत हो कर बाहर निकल रही थी) आदि हैं । वह नारी को सम्मान की दृष्टि से देखता था भले ही उस नारी का चरित्र कैसा भी क्यों न हो ।

---

8. उपन्यास कला एक विवेचन - जा॰विश्वमित्र - पृ॰ 58 - 59॰

बाणभट्ट अपने-आप को हीन इसलिए समझता था क्योंकि वह अपने पूर्वजों की तरह विद्वान या महान नहीं बन पाया था । इसकी पूर्ति वह कई तरह की कलाओं को सीख कर करता है । एड्लर के द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त को अधिक मात्रा में जन समुदाय में प्राप्त किया जा सकता है और साहित्यकार भी । इस संदर्भ में लेखक को मनोविश्लेषण का ज्ञान होने या न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता है ।

भट्टिनी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है आत्मगौरव और स्वजनों के प्रति प्रेम । वह बाणभट्ट की ओर आकर्षित होती है जो हमेशा अपने अचेतन में दबा कर रखती थी किन्तु जीभ से फिसल कर बाहर आ जाता है । क्योंकि अचेतन में छिपी बातें अक्सर किसी न किसी रूप से बाहर निकल पड़ती ही है ।

निपुणिका का चरित्र इस उपन्यास में सबसे अधिक मार्मिक है । लेखक ने बड़े ही सूक्ष्म रूप से यह दिखलाने की कोशिश की है कि किस प्रकार एक विधवा नारी को समाज में तरह-तरह के समस्याओं को झेलना पड़ता है । और उसके मन में कैसी कुण्ठा और अन्तर्द्वन्द्व उदित होते है । निपुणिका में भी अपराध भावना का उदय और बाणभट्ट की ओर झुकाव की भावना को उदात्तिकृत रूप में देखा जा सकता है । परन्तु जो उसके अचेतन में दमित इच्छा बाणभट्ट को पाने की थी, वह अन्त में उभर कर बाहर आ ही जाती है ।

महामाया का चरित्र उन नारियों के अन्तर्गत आता है जिनको समाज के द्वारा सम्मान मिलता है । इनके पति के सन्यास ग्रहण करने पर खुद भी सन्यासिनी हो जाती है । यह एक प्रकार की कुण्ठा है जो अचेतन में रहती है ।

अन्य पात्रों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी ने उनकी आन्तरिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म निरीक्षण कर के ही प्रस्तुत किया है ।

चारु चन्द्रलेखा :-

इसमें नागनाथ उस श्रेणी का साधु है जो बेकार के कार्यों में अच्छे घरों की स्त्रियों को अपने बश में कर लेता है । इतना ही नहीं उसके मन में विकृति भी पाई जा सकती है । आचार्य द्विवेदी ने इस पात्र का चित्रण इतनी अच्छी तरह से किया है कि वे अपने विचारों को इस पात्र के माध्यम से लोगों तक पहुँचना चाहते है । उनका विचार था कि सिद्धियों से समाज का उद्धार नहीं हो सकता है । एक उदाहरण देखा जा सकता है - " नागनाथ उन समस्त साधुओं का प्रतीक है जो कोटिवेधी रस सिद्ध करने के फेर में अपना ही नहीं देश का भी अकल्याण कर बैठे । " [1]

रानी चन्द्रलेखा इस उपन्यास की नायिका है । उसकी कमजोरी के कारण ही नागनाथ के चुंगल में फँस जाती है । उसमें उच्च भावना और लैंगिक विपर्यास को देखा जा सकता है । वह अपने पति को छोड़कर सिद्धियों के पीछे घूमती रहती थी जिसको वह भी अपराध समझती थी परन्तु वह न चाहकर भी कुछनहीं कर पाती है । किन्तु यह जरूर देखा जा सकता है कि अपनी गलतियों को छुपाने के लिए अच्छी तरह से रक्षा युक्तियों का प्रयोग करती है । जिसका वर्णन लेखक ने किया है ।

घुड़सवार सातवाहन आचार्य द्विवेदी का काल्पनिकपात्र है । यह एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जिसके अन्दर समस्त समस्याएँ घूमती है । किसी भी पात्र की बात उठती है तो सीधे आ कर इसी से टकराती है । राजा सातवाहन से सम्बन्धित कुछ सन्दर्भ मिलते है जिनका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता, जैसे स्वप्न देखे हुऐ, रक्षा युक्तियाँ का प्रयोग करते हुए । उसमें भी अपराध की भावना अन्य पात्रों की तरह देखने को मिलती है . और अचेतन में दमित इच्छाओं को भी साफ देख सकते है ।

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, चारुचन्द्रलेख पृ॰ 165.

पुनर्नवा :-

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखा जाये भी यह उपन्यास सफल कृति है । पात्र चाहे अतीत के हो या वर्तमान के सब का वर्णन अति मार्मिक ढ़ंग से हुआ है । ऐसा देखा जा सकता है कि लेखक कई चीजों का ध्यान रखते है जैसे वातावरण, वार्तालाप आदि ।

इस उपन्यास का देवरात एक सीधा व्यक्ति है । वह ज्ञानी और विद्वान है किन्तु उसमें अहम् को देखा नहीं जा सकता है । इसमें अचेतन में दमित इच्छाओं को देखा भी जा सकता है जो मंजुला को देखकर बाहर आने की कोशिश करती है । इसके कारण एक अच्छी मानी नृर्तकी और सुन्दरी मंजुला की प्रशंसा न कर उसे धिक्कारता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसका कारण ही कुछ अलग होता है जिसे परपीड़नरति कहते है । अपनी भावनाओं को छिपाने का एक और तरीका रक्षा युक्तियों के उपयोग से होता है जैसे देवरात मंजुला के प्रति अपनी भावनाओं को उदात्तिकृत करदेते है ।

एक उदाहरण भी दिया जा सकता है - " देवरात ने हँसते हुए कहा, " अवश्य सुनाओं देवि, मगर सौन्दर्य तो वहीं है जो बासी नहीं होता ।" [10] इन पंक्तियों के द्वारा देवरात अपने मन की बातें कहने का प्रयत्न करता है ।

मंजुला राज नृर्तकी और बहुत सुन्दर थी । तो यह स्वभाविक है कि उसमें अहम्-भाव की कोई कमी नहीं । अपने-आप पर गर्व करने का एक और कारण यह था कि उसे झलक मात्र पाने के लिए सभी लोग लालाइत थे । उसके (मंजुला) के अचेतन मन में देवरात को पाने की लालसा रहती है । निपुणिका की तरह ही इसमें भी अपराध-भाव को देखा जा सकता है जो उसके नीच कार्य करने के कारण होता है वह अपनी गलती को मानती हुई पाई जाती है ।

---

10. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 2, पुनर्नवा पृ. 23.

देवरात की पत्नी शर्मिष्ठा के बारे में अधिक नहीं लिखा गया इसके बारे में तभी पता चलता, जब देवरात का हलद्वीप आने के कारण का पता चलता है । शर्मिष्ठा के अच्छे रूप, गुण और शील के कारण ही उसके मर जाने पर भी देवरात उसको भूल नहीं पाता है । और मंजुला का स्वभाव उसकी पत्नी से मिलता-जुलता होने के कारण उसको देख कर सहचर्य करता है ।

मृणाल मंजरी को एक आदर्श गृहिणी के रूप में दिखाया गया, एक कुलीन नारी की बेटी होती हुई भी उसमें कोई नीच भाव को देखा नहीं जा सकता है । ऐसा लगता है कि वातावरण का प्रभाव इस पर अधिक पड़ा था, पैत्रिक प्रभाव से मृणाल मंजरी आर्यक को स्वप्न में कई बार देखती है । इसमें विन्रम की भावना का भी देखा जा सकता है । और साथ ही उसका पराहम् भी बहुत अच्छी तरह से विकासित पाया जाता है । इसका पता तब होता है जब वह आर्यक के बारे में अपने पिताजी से पूछने में शरमाती है ।

चन्द्रा का चरित्र-चित्रण लेखक ने बहुत मार्मिक ढंग से किया है । वह आर्यक के न चाहने पर भी उसके पीछे पड़ जाती है, उसे लोक मर्यादा की चिन्ता नहीं रहती है । उसमें दमित काम वासना होती है जिसे वह खुल कर व्यक्त करती भी है । मनोविश्लेषण की भाषा में ऐसे व्यक्ति को विकृत से पीड़ित माना जाता है । जैसे धीरक से वह कहती है - " चन्द्रा ने हँसते हुए कहा - क्या बदनामी हुई तेरी ? यही न कि तू चन्द्रा के साथ अनुचित सम्बन्ध रखता है । दूसरे, पुरूष की क्या बदनामी है ? तेरे जैसा जवान पुरूष में होती तो न जाने कितनी लडकियों से प्रेम करती । तू तो कायर की तरह बात कर रहा है । " 1

इन पंक्तियों से उसमें दमित इच्छा का ज्ञान होता है । दूसरे शब्दों में उसके चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है । लेखक इस पात्र के द्वारा यह बताना चाहते है कि समाज में नारी को ठीक स्थान न मिलने पर वह किस प्रकार से व्यवहार करती है, और

---

1. पुनर्नवा पृ. 86.

वह भी समाज की परवाह किये बिना । परन्तु उसकी करनी पर बाद में अपराध की भावना भी उदय होता है जिसको वह कभी व्यक्त नहीं करती है ।

गोपाल आर्यक और श्यामरूप उपन्यास में जनसेवक के रूप में उभर कर आये है । इन दोनों के हृदय में कमजोरों बेसहारें तथा शोषितों की सेवा करने की भावना है । उसे अपना धर्म समझते हैं । गोपाल आर्यक का यह उदान्त चरित्र कुछ विशिष्ट ही लगता है । सामान्य तौर पर व्यक्ति कुछ अधिक ही अहम् केन्द्रित होता है । तो यह कहा जा सकता है कि ये दोनों स्वभाव से बहिर्मुखी है । क्योंकि अपने से ज्यादा दूसरो की परवाह करता है । आर्यक के पीछे जब चन्द्रा पड़ी रहती है तो उसमें अपराध की भावना का उदय होता है । इससे मुक्त होने के लिए वह रक्षायुक्ति का प्रयोग करता है । अचेत मन से आर्यक-चन्द्रा, श्यामरूप-मांदी को याद करते है पर अपने बाहरी व्यवहार में इसे दिखने नहीं देते है ।

आर्यक में हमेशा उच्चता प्राप्ति का प्रयास देखा जा सकता है । ऐसी भावना तो सामान्य तौर से हर मनुष्य में होती है दूसरे शब्दों में यह एक प्रकार से मूल प्रवृत्ति है ।

आर्यक के द्वारा लेखक ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण करने की कोशिश की, है जो वैवाहिक जीवन के बाहर किसी स्त्री से सम्बन्ध रखने के लिए डरता है । वह समाज के नियमों का ख्याल करता है । इस प्रकार के चरित्र का व्यक्ति समाज में विरल ही होते है ।

अनामदास का पोथा :-

इस उपन्यास के प्रमुख पात्रों में - रैक्व, जाबाला, माता ऋतुम्भरा आश्वलायन आदि आते है । रैक्व का परिचय लेखक इस प्रकार देते है - वह एक ऐसा भोला व्यक्ति है कि जिसे सांसारिक ज्ञान बिल्कुल नहीं है । अनजाने में ही वह शुभा (जाबाला)

की ओर झुकता है । उसके मन में अपराध भावना पाप शब्द से जागृत हो जाती है जिसे दूर करने के लिए वह पीठ पर खुजलाता है और जिसके कारण मनोविश्लेषण की दृष्टि से तीन हैं - एक तो उस अपराध का परिहार, शुभा से सहचर्य रैक्व में हीन भावना का उदय होता है और तीसरा - एक प्रकार का तात्रिकताप इससे पता चलता है कि वह रैक्व कितने सूक्ष्म मस्तिष्क वाला व्यक्ति है । स्वभाव से बहिर्मुखी है । परन्तु यह महान किसी को मानता है तो वह केवल शुभा को ही । शुभा से बिछुड़ने के बाद उसका एक ही लक्ष्य था शुभा से फिर मिलने का । ऐसे कई लोग मिल जाते है जो किसी एक ही लक्ष्य को बना कर चलते है और प्राप्त करते है ।

रैक्व को इतना भी ज्ञान नहीं कि किसी के सामने क्या बोलना चाहिये और क्या नहीं । वह सबके सामने शुभा की प्रशंसा करता है । उसकी सुन्दरता आदि के बारे में भी बोलता है । इसका कारण यह हो सकता है कि उसके अचेतन में पूर्ण रूप से शुभा ही है । और साथ उसमें अहम्-भाव भी है क्योंकि वह एक प्रकार की विकृति (जड़ सक्त प्रेमी) से भी पीडित था । ऐसा लगता है कि रैक्व पात्र की कल्पना कर लेखक यह कहना चाहता है कि मनुष्य भले ही वह कोई भी हो सभी में मूल प्रवृत्ति होती है । इसके बारे में ज्ञान हो या न हो इसका कोई फर्क नहीं पड़ता । वह केवल आत्मशक्ति पर निर्भर होता है कि वह व्यक्ति अपनी नैसर्गिक इच्छाओं को कैसे नियंत्रण में रखता है ।

जाबाला इस उपन्यास की नायिका है वह बहुत समझदार है । उसमें अपनी विद्वता के कारण अहम् है । रैक्व की ओर वह भी आकर्षित होती है । परन्तु वह लोक भय के कारण अपनी इच्छा को शोभित करती है जिसके कारण वह मानसिक रोग से पीड़ित होती है । उसके मन की बात जीभ से फिसल कर निकल जाती है । रक्षा युक्ति का प्रयोग जाबाला भी करती है । जाबाला में कई तरह की इच्छायें जरूर थी लेकिन विकसित पराहम् के कारण वह भटक नहीं पाती है । वह भी स्वभाव से बहिर्मुखी है ।

उसके मन में जो भी प्रतिक्रियाएँ रैक्व से मिलने पर होती है और उससे बिछुड़ने ने पर उसकी क्या हालत होती है । उसका भी मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है । जहाँ कि उपन्यासकार का लक्ष्य मानवतावादी दृष्टि को प्रतिबिम्बित करना है ।

ऋजुका गाड़ीवान की पत्नी है जिसमें आत्मगौरव की भावना है । उसमे विन्नम की भावना भी देखा जा सकती है । इसका कारण उसके अचेतन में अपने पति के बारे में ही सोचती रहती है । वह भी अपने पति को खोकर मानसिक रूपसेपीड़ित है । जिससे वह छुटकारा पाना चाहती है । इस पात्र के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता है । इस तरह के चरित्र वाले कम होते है जो बहुत दुखित होते हुऐं भी अपने गौरव को नहीं खोते । इसको विन्नम भावना और उसमें जो उदात्त भावना है उनका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है । यह भी स्वभाव से बहिर्मुखी है ।

माता ऋतुम्भरा स्वभाव को बहिर्मुखी है । वह रैक्व को लोक ज्ञान देती है । वह अपनी चिन्ता को छोड़ कर दूसरों के सम्बन्ध में सोचती है । रैक्व के अचेतन में छिपी हुई बातों को ज्ञात कराती है । वह अच्छी सौम्य नारी के रूप में उपन्यास में आती है । इनके चरित्र के बारे में कुछ ऐसी बात नहीं पायी जाती है जिसका मनो-विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है ।

4.3 मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वातावरण :-

साहित्यकार अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि होता है । उसकी कृतियों में तत्कालीन समाज एवं मानव जीवन का यथार्थ झलकता है । किसी भी परिवार, जाति या वर्ग पर वातावरण का प्रभाव अवश्य रहता है । वातावरण का सुन्दर तथा मनो - हारी चित्रण करने पर कथा में प्राण आ जाता है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वातावरण का रूप अन्य उपन्यासों के परिवेश से अलग होता है । क्योंकि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में क्रिया-प्रतिक्रियाएँ बाहरी न होकर आन्तरिक होती है ।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यास : वातावरण :-

देशकाल या वातावरण का उपन्यास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से सम्बन्धित वातावरण तो नहीं है ।

बाणभट्ट की आत्मकथा :-

" बाणभट्ट की आत्मकथा " की कथावस्तु ऐतिहासिक और सांस्कृति होने के कारण वातावरण भी उसी के अनुसार है । परन्तु लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति का भी उपयोग बहुत हद तक किया है । इनके उपन्यासों के सन्दर्भों को परखने पर वातावरण का चित्र आँखों के सामने उभर कर आ जाता है । एक उदाहरण देखिए - " साधारणत: जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है उनमें एक देवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं, मैं नहीं भूलता । मैं स्त्री- शरीर को देव-मन्दिर के समान पवित्र मानता हूँ, उस पर की गयी अनानुकूल टीकाओं को मैं सहन नहीं कर सकता। इसलिए मैंने मण्डली में ऐसे कठोर नियम बना रखें थे कि स्त्रियों की इच्छा के विरुद्ध उनसे कोई बोल तक नहीं सकता था । " [12]

उक्त पंक्तियों से तत्कालीन नारी के प्रति भावना का ज्ञात होता है इससे भी अधिक बाणभट्ट के घर का वातावरण जिसमें वह पला उसका ज्ञान होता है । यह लेखक की भावना थी जो बाणभट्ट के माध्यम से व्यक्त हुई है । दूसरे शब्दों में, लेखक जिस वातावरण में पले हैं उसको भी इन वाक्यों से जाना जा सकता है ।

12• हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग-1 - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ• 28•

बाणभट्ट, निपुणिका के प्रति भावनाओं को लगातार दबा कर रखता है । एक उदाहरण लिजिए - " क्षण भर में मेरे मानस समुद्र में विक्षोभ का तूफान उठा और शान्त हो गया । मैं सदा अपने को सँभाल सकने में समर्थ रहा हूँ । इस बात का मुझे अभिमान है । मैंने एक बार आग्रह, मेरी आवाज़ में पुकारा निउनिया निपुणिका ठिठक कर खड़ी हो गयी - उसका बाँया हाथ की देश पर व्यस्त था, कंगन कलाई पर सरक आया, दाहिना हाथ शिथिल श्यामा लता के समान झूल पड़ा था, उसकी कमनीय देह-लता नृत्यभंग से जरा झुक गयी थी, मुखमण्डल श्रम-बिन्दुओं से परिपूर्ण था । "[13]

इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि बाणभट्ट चाह कर भी नारी के प्रति भावना को बदल नहीं पा रहा है । परन्तु उसके मन में एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है । यहाँ इसका सुन्दर रूप से लेखक ने वर्णन किया है ।

निपुणिका बाणभट्ट को ओर झुकती है । परन्तु बाणभट्ट की नारी के प्रति भावना को जान कर अपनी भावना अपरी तौर से बदल लेती है । परन्तु वह अधिक समय तक दमित न रह कर अनायास वे अन्त में उभर कर बाहर आती हुई देखी जा सकती है । जैसे - " अन्तिम दृश्य ---- तो सचमुच विचलित हो गयी । वह सिर से पैर तक सिहर गयी, इसके शरीर की एक-एक शिरा शिथिल हो गयी । "[14]

लेखक ने सूक्ष्म ढंग से निपुणिका के मन में दमित इच्छा को प्रकट होते हुये दिखाया है । इससे भी अधिक लेखक ने इतने अच्छे वातावरण को चुना है कि वह भी महत्वपूर्ण है । निपुणिका नाटक में अभिनय करती हुई अपनी आन्तरिक भावनाओं को व्यक्त करती है जिनको दैनिकजीवन में व्यक्त करने में असफल थी । दूसरे शब्दों में अनकूल वातावरण को पाते ही निपुणिका अपनी दमित भावना को अभिनय के रूप में व्यक्त करती है जो वास्तविक भावना थी । इस तरह एक एक दृश्य को रचना का रूप देने से पहले, योजना बनाना विशिष्ट लेखक के ही लक्षण है ।

---

13. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. 29.
14. - वही - पृ. 250.

चारु चन्द्रलेख :-

इस उपन्यास की कथावस्तु बारहवीं - तेरहवीं शताब्दी की शासन व्यवस्था और समाज से सम्बन्धित है । किन्तु इस उपन्यास में भी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तत्वों के साथ कल्पना का भी लेखक ने बहुत हद तक प्रयोग किया है । लेखक को इतिहास युग और समाज का अच्छा ज्ञान था । साथ ही इतिहासकार की भाँति वैज्ञानिक होना पड़ता है । इसलिए उनके उपन्यास के कई सन्दर्भ मिलते है जिनका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है ।

चारुचन्द्रलेख में लेखक ने जिस प्रकार का वातावरण तैयार किया है वह बहुत अच्छा है । " अमोघवज्रवाद की आज्ञा से ही मैं भगवती विष्णुप्रिया के यहाँ गयी थी । मुझे यहाँ उनके सम्पर्क में आने से निस्सन्देह शान्ति मिली है । मेरा मन अब भी दो नावों पर सवार है । " [15]

पुनर्नवा :-

पुनर्नवा में द्विवेदी जी ने इतिहास, लोककथा और कल्पना को भी मिला कर उपन्यास को रूप दिया है । आचार्य द्विवेदी ने किसी विशिष्ट काल से सम्बन्धित थोड़ा ऐतिहासिक अंश और उस समय का वातावरण को लेकर उपन्यास रचे हैं । इस उपन्यास में पात्र, जैसे चन्द्रा के मन में दबी हुई अतृप्त वासनाओं को बहुत ही प्रभावपूर्ण वातावरण के साथ प्रस्तुत किये हैं । जैसे वह आर्यक के पीछे, समाज की चिन्ता को छोड़ कर लगी रही थी ।

मंजुला का एक संदर्भ उस समय का वातावरण प्रस्तुत करता है - " बड़ी ही करुण मधुर वाणी में उसने अपनी रचना पढ़ी । लेकिन कविता का पाठ आरम्भ करने के साथ ही भाव-विहल मुद्रा में दिखायी पड़ी, कैसा हुआ धम्मिल परा (जूड़ा) न जाने

---

15. चन्द्रलेखा पृ. 415

कब बिखरकर पीठ पर फैल गया । " 16 जिस वातावरण में बासी को ताजा कर रही है । उसका वर्णन मात्र को पढ़ने से पता चलता है कि उपन्यासकार ने पात्रों की मानसिकता व्यक्त करने के लिए वातावरण का सफल उपयोग किया है ।

देवरात में भी मंजुला के प्रति जो भावना है उसको सीधे वह कभी भी व्यक्त नहीं करता है । वह हमेशा सबके तीखे शब्दों के प्रयोग से उसके दिल की बात उलटे रूप से समझना चाहता है । लेखक इस सन्दर्भ को जिस वातावरण में व्यक्त किया है उससे पता चलता है कि देवरात का व्यवहार किस प्रकार का है और वातावरण के बदलने पर देवरात की बातचीत में भी काफी फर्क नजर आता है । अर्थात् वातावरण के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को देखा जा सकता है । उपन्यास में पात्रों का व्यवहार वातावरण के अनकूल दिखायी पड़ता है ।

अनामदास का पोथा :-

अनामदास का पोथा उपनिषद्काल के वातावरण को उपस्थित करता है । रैक्व जब जाबाला से मिलता है तो उसको चारों ओर का वातावरण सजीव लगता है । जाबाला का राजमहल में वापस चले जाने के बाद उसे किसी प्रकार की कमी नहीं होते हुए भी मानसिक कष्टों और अन्तर्द्वन्द्व के साथ राजमहल के सुख और सुविधाओं के वातावरण जो उसके कष्टों को परिहार करने का प्रयास व्यर्थ था। उस समय के आकाल ग्रस्त प्रान्तों के लोगों के नंगे-भूखे रूपों में आधुनिक भूख एवं गरीबी को दिखाने की कोशिश है । उपनिषद् काल में समाज की परिस्थिति, उस समय के वातावरण को प्रतिबिम्बत करते हुए लेखक यह कहना चाहते है कि केवल समाधि, दार्शनिक चिन्तन से सामाजिक कष्टों का परिहार नहीं हो सकता है । समाज का परिहार नहीं हो सकता है । लेखक ने वातावरण के निर्माण के साथ आधुनिक चिन्तन का पोषण किया है, जिससे पात्रों की मानसिकता को भी प्रस्फुटन में सहायता मिल सके ।

---

16. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग - २, पुनर्नवा, पृष्ठ नं. २४.

4·4 आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में संवाद :-

उपन्यास में कथोपकथन या संवाद का अपना ही महत्व होता है । आधुनिक उपन्यासों के संवादों में दैनिक जीवन प्रतिबिम्बित होता है जिसके कारण सजीवता आ जाती है । साथ ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि भी उनमें देखी जा सकती है । संवादों के सूक्ष्मता के साथ पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी सूक्ष्मता आने लगी । इसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक उपन्यासों में कथोपकथन नियोजित और तीव्र होते है ।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों को ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाता है । किन्तु उनके उपन्यासों का हर दृष्टि से मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है । इनके उपन्यासों के कथोपकथन या संवाद को भी इसी दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है ।

" बाणभट्ट की आत्मकथा " के प्रमुख पात्रों के संवादों को देखा जाय तो लगता है कि वे अपने मानसिक संवेगों को स्पष्ट शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर रहें हैं । भाषा को भी अगर ध्यान में लिया जाय तो, दो पात्रों के बीच संवाद उच्च स्तर के लगतें हैं । जो लेखक की श्रेणी का ज्ञात कराता है । उपन्यासों में लम्बे और छोटे दोनों तरह के संवादों को देखा जा सकता है । जैसे - बाणभट्ट और निपुणिका के बीच के संवाद । एक उदाहरण देखिए - " निउनिया, तू क्यों चली आयी, अब क्या कर रही है ? मैं तुझे दुखी देख रहा हूँ । तुझे इसी अवस्था में छोड़कर मैं यहाँ से टल नहीं सकता । बता, किस पर तू भाग आयी थी ? आज निरन्तर छः वर्षो से मेरा चित मुझे धिक्कार रहा है, मुझे ऐसा लगता है कि मैं ही तेरे समस्त दुखों का मूल हूँ । एक बात तू अपने मुख से कह दे कि यह बात गलत है । मैं क्या निर्दोष हूँ ? "

निपुणिका ने दीर्घ-निःश्वास लेते हुए कहा, " हाँ भट्ट, मेरे भाग आने के कारण तुम्हीं हो, परन्तु दोष तुम्हारा नहीं है । दोष मेरा ही है । तुम्हारे ऊपर मुझे मोह था । उस अभिनय की रात को मुझे एक क्षण के लिए लगा था कि मेरी जीत

होनेवाली है, परन्तु दूसरे ही क्षण तुमने मेरी आशा को चूर कर दिया । निर्दय, तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी देह को देव मंदिर के समान पवित्र मानते हो, पर एक बार भी तुमने समझा होता कि यह मंदिर हाड़-मांस का है, ईंट चूने का नहीं । जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगें, उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलिसात कर दिया । उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़ पाषाण-पिण्ड हो, तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु, है एक अड़िग जड़ता । मैं इसीलिए वहाँ ठहर नहीं सकी । जीवन में मैंने उसके बाद बहुत दु:ख झेले है, पर उस क्षण-भर के प्रत्याख्यान के समान कष्ट मुझे कभी नहीं हुआ । छ: वर्षो तक इस कुटिल दुनिया में असहाय मारी-मारी फिरी और अब मेरा मोह भक्ति के रूप में बदल गया है । भट्ट तुम मेरे गुरू हो, तुमने मुझे स्त्री-धर्म सिखाया है । छ: वर्ष के कठोर अनुभवों के बल पर मैं कह सकती हूँ कि तुम्हारी जड़ता ही अच्छी थी - मैं अभागिन थी जो तुम्हारा आश्रय छोड़कर चली आयी । मेरे जीवन में जो कुछ घटा है, उसे जानने की क्या जरूरत है ? आजकल मैं पान बेचती हूँ और छोटे राजकुल के अन्त: पुर में पान पहुँचाया करती हूँ । सब मिलाकर मैं दु:खी नहीं हूँ । तुम मेरी चिन्ता छोड़ो । जहाँ जा रहे हो वहाँ जाओ । यदि इस नगर में रहो, तो कभी-कभी दर्शन पाने की आशा मैं अवश्य रखूँगी । पर तुम इस दूकान पर अधिक मत ठहरों । यहाँ आनेवाले लोग स्त्री-शरीर को देव-मन्दिर नहीं मानते ।" 17

उक्त संवाद से बाणभट्ट के मन में छिपे अपराध-भावना और आकांक्षाओं का ज्ञात होता है । और साथ-ही निपुणिका के उत्तर से उसके मानसिक संवेगों को उभर कर आते हुए देखा जा सकता है ।

लम्बे-चौड़े संवादों के अलावा भी छोटे संवाद भी मिलते है जिनके द्वारा पात्रों की मानसिकता का अंदाजा लगाया जा सकता है । जैसे - बाबा और बाणभट्ट के बीच का यह संवाद - "बाबा ने निमर्मता के साथ कहा, " तो बुरा क्या है रे ? इसके

---

17. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. 31-32.

झाँसे में क्यों आता है ? घटने न दे, कितना आनन्द आ जायेगा ! तू भूलता है, पागल ! इस लीला में रस मिलता है न ? अच्छा ठीक बता, तू उस लड़की को क्या समझता है ? " मैं, मैं ... मैं ... !! (बाणभट्ट का उत्तर) [18]

इस तरह पूरे उपन्यास में कई लम्बे चौड़े और छोटे संवाद मिलते है जो पात्रों के मानसिक स्तर में छिपे अपराहम् भावना, दमित वासना आदि को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है ।

चारुचन्द्रलेख में भी इसी तरह के लम्बे और छोटे संवादों को देखा जा सकता है । जैसे - राजा सातवाहन और चन्द्रलेखा के बीच हुए संवाद का उदाहरण -

" मैंने (राजा सातवाहन) सोत्साह उत्तर दिया, " देवि ! कल्याण रूपा महादेवी चन्द्रलेखा जिसको सहाय हों वह धन्य है, उसके लिए कुशल-प्रश्न का क्या प्रयोजन है ? तुम तो स्वस्थ हो देवि ? "

मैं (चन्द्रलेखा) पूर्ण स्वस्थ हूं महाराज, मुझे खेद है कि मैं शत्रु संहार में आपकी पूरी सहायता न कर सकी । मैं कब गिर गयी, पता नहीं । परन्तु मुझे लगता है कि मैं न गिरती तो बुरा होता । हर पाप का प्रायश्चित हो जाना अच्छा होता है । महाराज मुझमें क्रोध आ गया था । यह तपोभ्रंश का लक्षण है । .. मैना को क्रोध नहीं आया बोधा को तो कभी आता ही नहीं । मैं ही पथभ्रष्ट हो गयी । " [19]

उक्त संवाद से राजा अपनी रानी, चन्द्रलेखा को अपने करीब ही रखना चाहता था, जो असंभव हो रहा था, इसीलिए जब थोड़े समय के लिए उसके साथ रानी चन्द्रलेखा रहती है तो उस पर अपना जो अधिकार है उसे दिखाने की कोशिश करता है ।

---

18. हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली - भाग - 1, बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ. 79.
19. " " चारु चन्द्रलेखा पृ. 423.

चन्द्रलेखा के उत्तर से ज्ञात होता है कि उस के मन में भी अपराध की भावना है । जैसे वह प्रायश्चित करना चाहती है । अर्थात दोनों पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों को उक्त पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं ।

" पुनर्नवा " में भी आचार्य द्विवेदी ने अतिसूक्ष्म रूप से पात्रों के बीच संवादों को निभाया है । जैसे - देवरात और मंजुला का संवाद । दोनों पात्रों के मन में स्थित भावना को दर्शाते हैं । " मंजुला ने धीमे स्वर में पूछा, " आर्य, उस दिन मेरे कवितापाठ से आपको चोट लगी । अपराधिनी को क्षमा करना, मैं बहुत लज्जित हूँ । " देवरात हँसे, " तुम्हारी उस कविता से मुझे चोट लगी ? किसने कहा, देवि ? फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बोलते गये, " बासी घाव हरा हो गया था देवि ! उसके बारे में न पूछ बैठना, पर उस दिन तुम्हारें भीतर सुप्त देवता का सन्धान मुझे मिला था, सुप्त देवता, जो जाग उठा था । " [20]

एक और उदाहरण जो धूता और चारूदत्त के बीच का संवाद है - " धूता ने कुछ याद करके पूछा, " आग किधर लगायी गयी थी, वसन्तसेना बहिन का घर तो सुरक्षित है न ? चारूदत्त वसन्तसेना के बारे में बहुत चिन्तित थे । यह भी पता लगा लिया था कि आग उधर नहीं फैली है । पर अभी तक उन्हें यह पता नहीं था कि वसन्तसेना है कहाँ । यथासाध्य वे पता लगाने का प्रयत्न भी कर रहे थे । पर धूता से यह कहने में वे लजा रहे थे । " आग तो श्रेष्ठि - चत्वर से ही फैली है । उधर ठीक ही होगा । " [21]

उक्त पंक्तियों में धूता और चारूदत्त की मानसिकता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । धूता ने वसन्तसेना को अपनी छोटी बहिन के रूप में स्वीकार लिया था । वह अपने पति को तिरस्कार भावना से नहीं देखती थी । परन्तु चारूदत्त में

---

20. हजारी प्रसाद द्विवेदी भाग - 2, पुनर्नवा - पृ. 28.
21. - वही - पृ. 251.

अपराध भावना थी । इसी कारण उसे संक्षिप्त उत्तर देते हुए पाया जाता है ।

इसी तरह पूरे उपन्यास में पात्रों के बीच के संवादों से उनकी मानसिक स्थितियों को संवादों के द्वारा पता लगाया जा सकता है । आचार्य द्विवेदी ने बड़ी कुशलता पूर्वक संवाद रचना की है ।

" अनामदास का पोथा " में भी रोचक संवाद हैं । जैसे रैक्व और जाबाला (शुभा) के बीच, जाबाला और औदुम्बरायण के बीच, रैक्व और औदुम्बरायण के बीच, रैक्व और माता ऋतम्भरा के बीच आदि । उदाहरण के लिए -
" राजकुमारी का मुख म्लान हो गया । बोली, " नहीं ऋषि कुमार, तुम स्वर्गीय ज्योति हो । मेरी हँसी तो अधम जन के कलुषित चित्र का विनोद है । हाय, तुम्हारे-जैसा पवित्र मन कहाँ मिलता है ? अच्छा कुमार, मुझे देखकर तुम्हें कैसा अनुभव होता है ? "

रैक्व का उत्तर " अनुभव ? जानती हो शुभे सब-कुछ वायु से उत्पन्न होता है, वायु में विलीन हो जाता है । मेरे भीतर, तुम्हारे भीतर और समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड में वायु ही सब - कुछ करा रहा है । मेरे भीतर जो प्राणवायु है, वह तुम्हें देखकर बहुत चंचल हो गया है । तुम्हें दिखायी नहीं देता पर मेरे भीतर भयंकर आँधी बह रही है । मैं नहीं जानता कि वह मुझे उड़ाकर कहाँ ले जायेगी । पर वह उड़ा रही है । मैं उड़ रहा हूँ । वह मेरे अन्तर्वर्ती प्राणवायु को तुम्हारे भीतर ठेलकर घुसा देना चाहती है । मेरा प्राण चंचल हो उठा है । वायु की इस अद्भुत शक्ति का परिचय मुझे पहले नहीं था । तुम्हें देखकर मुझे नया प्रकाश मिल रहा है । प्रकाश का कारण वायु है । " 22

उक्त पंक्तियों में रैक्व अपने हृदय की बात " वायु " शब्द के प्रयोग से स्पष्ट करता है कि वह उसकी ओर आकर्षित हो गया है, किन्तु उसे इस का ज्ञान ही नहीं था । क्योंकि उसे सांसारिक बंधनों के प्रति कोई ज्ञान नहीं था ।

---

22. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ. 323.

एक और उदाहरण दिया जा सकता है जिसमें रैक्व शुभा के प्रति अपनी भावना को माता ऋतुम्भरा के सामने प्रस्तुत करता है ।

" देखी है माँ, शुभा को देखा है, बहुत सुन्दर है शुभा । बहुत मोठी बोलती है । " बहुत बड़ी तत्वज्ञानी है । पिछली रात ही तो उसे स्वप्न में देखा है । "

शुभा कौन है, बेटा ? ‡ माता प्रश्न करती है । ‡ " 23

अन्त में कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदीजी के चारों उपन्यासों में पात्रों के संवादों के द्वारा उनके मानसिक कष्टो, दुखों कुण्ठाओं आदि को अत्यन्त मार्मिक रूप से रचा है । उपन्यास में कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण और संवाद, मनो - वैज्ञानिक उपन्यास पर चाहे खरे न उतरे, फिर भी उनका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन हो सकता है ।

आचार्य द्विवेदी ने मानव-मन, व्यवहार और वार्तालाप आदि को बड़े ही गौर से उभारा है जिनकी निखार में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं का स्वाभाविक समा- वेश हो गया है । ये सहज और प्रभावशाली होते हुए भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए उत्कृष्ट आधार भी हैं ।

23· हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग - 2, अनामदास का पोथा - पृ· 340·

पंचम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है । इसीलिए वह संसार के सभी जीव जन्तुओं से उत्तम माना जाता है । वह मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ कला, साहित्य, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है जिसके कारण उसका भविष्य बेहतर बन रहा है । आदि काल से आधुनिक युग तक समाज में दो मुख्य समस्याएँ पाई जा सकती है - "आर्थिक और मानसिक । कई विद्वानों ने इन समस्याओं का समाधान खोजने के प्रयास भी किये है । इन प्रयासों में कार्ल मार्क्स और सिगमण्ड फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद ने बहुत हद तक समाज की दोनों समस्याओं के समाधान ढूँढ़े । इसी कारण उनकी विचार धाराओं ने समाज के हर एक क्षेत्र को बहुत प्रभावित किया है ।

साहित्य मनुष्य की सृजनात्मक क्रियाओं में एक है और साथ ही महत्वपूर्ण भी । साहित्य के हर विधा पर भी इन विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा ।

उत्तर उन्नीसवी सदी में मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव पश्चिम के साहित्य तक ही न रह कर दूसरे देशों के साहित्य को भी प्रभावित किया । हिन्दी उपन्यास, कहानी नाटक, काव्यों आदि भी इसके अपवाद नहीं रहें । उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, अज्ञेय जैसे लेखकों के उपन्यास मनोविश्लेषण सिद्धान्तों पर अधिक आधारित रहें है । इनके अलावा भी कई प्रमुख उपन्यास है जो किसी दूसरी विचारधारा या दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर रचे गये है । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इन उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन नहीं किया जा सकता है । मनोविश्लेषण शास्त्र मानव-मन से सम्बन्धित होता है । अत: यह संभव है कि इसी वर्ग के उपन्यासों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों को भी लिया जा सकता है ।

किसी भी रचना का विशेष दृष्टि से अध्ययन करने से पहले रचनाकार का अध्ययन भी उसी दृष्टि से करना आवश्यक होता है । आचार्य द्विवेदी के व्यक्तित्व और कृतित्व पक्ष का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर कहा जा सकता है कि अनेक व्यक्तियों का उन के बचपन में प्रभाव पड़ा । जैसे पंडित नन्ददुलारे वाजपेयी जी, मदनमोहन मालवीय, रविन्द्रनाथ ठाकुर, हरिऔध विधुशेखर शास्त्री, क्षितमोहन सेन आदि । उनको घर और बाहरी वातावरण ने भी बहुत प्रभावित किया । इन सब के प्रभाव से आचार्य द्विवेदी जी का एक विशिष्ट व्यक्तित्व बना जिसका प्रभाव उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है ।

आचार्य द्विवेदी जी गहन अध्ययन प्रिय थे । इसी कारण उन्होंने पाश्चात्य साहित्य और महत्वपूर्ण विचार धाराओं का भी काफी ज्ञान प्राप्त किया है । भले ही उनके चारों उपन्यासों की कथा ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित क्यों न हो । इनकी रचनाओं को साहित्य की उस श्रेणी में रखा जा सकता है जो मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा से संबंध न रख कर चलते है । फिर भी इनके उपन्यासों का फ्रायड़, एड़लर, युंग और अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर विश्लेषण किया जा सकता है ।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में कुछ पात्रों को स्वप्न देखते हुऐ पाये जाते है । स्वप्न ही नहीं एक आध पात्र तो दिवास्वप्न भी देखते मिलते है । स्वप्न या दिवा - स्वप्न समान्य तौर पर सभी लोग देखते है किन्तु मनोविश्लेषण में स्वप्न, जीभ से फिसली बातों, अपराध भावनाओं आदि को महत्त्व बहुत दिया जाता है । इन सबका सम्बन्ध अचेतन मन से होता है । और साहित्य का भला कोई भी विधा हो, पात्र के अचेतन में क्या है इसको लेखक जान कर ही रचना करता है । मनोविश्लेषण, अचेतन मन का ही अध्ययन होता है ।

इसके अलावा कई पात्रों के अचेतन मन में दमित वासनाओं के होने के कारण उनके बाहरी व्यवहार में परिवर्तन देखा जा सकता है । आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के कुछ पात्रों में तरह-तरह की विकृतियों को देखा जा सकता है । परन्तु विकृति अपने में समाज में समान्य सी चीज है । कुण्ठा, अन्तर्द्वन्द्व, विभ्रम से लगभग सभी निजी समस्याओं के कारण पीड़ित रहते है । जिसको द्विवेदी के उपन्यासों के पात्रों में भी पाया जा सकता है ।

यह तो नहीं कहा जा सकता है कि हर एक व्यक्ति में केवल उच्च भावनाओं को देखा जा सकता है । एडलर के अनुसार अगर किसी व्यक्ति में हीन भावनाएँ है तो इसका कारण जरूर उसमें कोई-न-कोई कमी होगी जिसके कारण वह अपने-आप को दूसरों से कमजोर समझाता है । इसी की पूर्ती वह किसी-न-किसी प्रकार करता है । जब व्यक्ति समाज की आँखों के सामने अपने महत्व को स्थापित कर देता है तो वह उच्चता या महानता की प्राप्ति का प्रयास करने लगता है । इस तरह की भावनाओं और उनसे अच्छे बनने के प्रयासों को इनके चारों उपन्यासों के पात्रों में पाया जाता है ।

परामनोविज्ञान से संबन्धित जितनी घटनाएँ मिलती है । वे सब मानव इतिहास जितने पुराने है । किन्तु इनके अध्ययन में मनोवैज्ञानिक कुछ हद तक ही सफल हो पाया है । संसार के कई देशों के साहित्य में इस से सम्बन्धित सन्दर्भ मिलते है । द्विवेदी के उपन्यासों में इनसे सम्बन्धित सन्दर्भ है जिनकी व्याख्या भी आधुनिक मनोविज्ञान सीमाओं में हो सकती है ।

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों के औपन्यासिक तत्वों के आधार को मनो - विश्लेषण दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है । द्विवेदी जी ने औपन्यासिक विधा और अभिव्यक्ति को सूक्ष्मता से ग्रहण किया है । हर पक्ष अर्थात् कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद आदि को बहुत ही सूक्ष्म रूप से देखा है । यही कारण है कि उनके उपन्यासों में इतनी सजीवता देखी जा सकती है ।

अंत में कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदी ने प्राचीन इतिहास को अपने उपन्यासों का आधार बना कर आधुनिक दृष्टिकोण के साथ उपन्यासों की रचना की है । परन्तु केवल ऐतिहासिक,सांस्कृतिक दृष्टि से ही नहीं मनोविश्लेषण की दृष्टि से भी इनकी उपन्यासों का अध्ययन किया जा सकता है ।

प्रस्तुत अध्ययन की सीमाओं को देखकर यह स्पष्ट हो है कि इस दृष्टि से अध्ययन की और भी संभावनाएँ है ।

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

(क) आधार ग्रन्थ

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 1,

   1. बाणभट्ट की आत्मकथा
   2. चारु चन्द्रलेखा

   राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली 1981

2. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली - भाग - 2,

   1. पुनर्नवा
   2. अनामदास का पोथा

   राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली - 1981

(ख) सन्दर्भ ग्रंथ (हिन्दी)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य एक अनुशीलन : डा. यदुनाथ चौबे, अनुभव प्रकाशन कानपुर, 1980

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक बोध : संजीव भानावत, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 1981

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में जीवन दर्शन, : श्रीमती मंजु सारस्वत, युनिक ट्रेडर्स, जयपुर 1981

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य : भाषा और शैली : विशनकुमार शर्मा, ग्रन्थायन, अलीगढ़ 1982

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कृतित्व का शैली वैज्ञानिक अध्ययन	:	वैरागी लक्ष्मीलाल
आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य	:	गंगाधर झा, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1977
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्मृति धरोहर	:	शंकर दयाल सिंह, मुक्तकंठ प्रकाशन, पटना 1979
उपन्यास कला एक विवेचन	:	डा॰विश्वामित्र, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी 1962
उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी	:	डा॰बादामसिंह रावत, गिरनार प्रकाशन, मेहसाना 1980
देवराज उपाध्याय ग्रन्थावली भाग - 2	:	किसलय प्रकाशन, इलाहाबाद 1978
नये उपन्यासों में नये प्रयोग	:	डा॰दगल झाल्टे, प्रभात प्रकाश प्रथम संस्करण 1986
पुनर्नवा : चेतना और शिल्प	:	राजनारायण विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1976
शान्तिनिकेतन से शिवालिक	:	डा॰शिव प्रसाद सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1988

हजारी प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यास : राज काव, साहित्य निधि, दिल्ली 1987

हजारी प्रसाद द्विवेदी संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 1989

हिन्दी उपन्यास : आधुनिक विचार धाराएँ : सुमित्रा त्यागी, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली 1978

हिन्दी उपन्यास कला : डा॰ प्रतापनारायण टंडन, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी 1965

हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य : संपादक डा॰ महीप सिंह, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली 1989

हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा : रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1968

(ग) पत्र - पत्रिकाएँ :-

आलोचना - 58, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचना भूमि : विश्वनाथ त्रिपाठी, अप्रैल - मई 1972

आलोचना हजारी प्रसाद द्विवेदी : स्मृति अंक, 1979 - 49-50.

आलोचना, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - व्यक्तित्व और साहित्य : डा॰ गणपति चन्द्र गुप्त, 1964.

दास्तवेज - 26 - हजारीप्रसाद : अपने पत्रों के आईने में, मंजु राठोर ।

मधुमती, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के बौद्धिक - दार्शनिक पक्ष का अनुशीलन : प्रेम प्रकाश भट्ट 1980

मधुमती, रैक्व आख्यान : मानव सत्य का अनुसंधान : राधेश्याम जांगीड़ 1980

सरस्वती आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एक लघु संस्मरण : डा॰उदयनारायण तिवारी जुलाई 1979

(घ) कोश

पौराणिक संदर्भ कोश : डा॰एन॰पी॰कुट्टन पिल्लै, विज्ञान प्रकाशन, हैदराबाद 1984

मानविकी पारिभाषिक कोश : मनोविज्ञान खण्ड, पद्मा अग्रवाल

मनोविज्ञान का पारिभाषिक शब्दकोश : निर्मला शेरजंग ।

हिन्दी साहित्य कोश : ज्ञानमंडली लिमिटेड, वाराणसी

Four Archetypes	C.G.Jung Translated by R.F.C.Hull Routledge and Kegan Paul London, 1972
Personality Theories	Larry A Hjelee and Daniel J. Zieglar McGraw-Hill International Book Co., Singapore, 1981
Psychology	D.L. Shepard Science Research Associates U.S.A. 1977
Sigmund Freud-Life and Work Vol. III The Last Phase 1919-1939	Ernest Jones The Hogarth Press,London 1974
Theories of Personality	Duane Schultz Brooks/Cole Publishing Co., Monterey, California 1976